वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 94
ISBN 978-93-82071-13-6

जैन महाभारत

(पाण्डव पुराण, हरिवंशपुराण के आधार से)

—: लेखिका : —

गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव, 11 अक्टूबर 2011 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित "प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष" के अन्तर्गत ब्र. उमा देवी जैन की क्षुल्लिका दीक्षा समारोह के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.-250404,

फोन नं.- (01233) 280184, 280994

Website : www.jambudweep.org E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

तृतीय संस्करण	वीर नि. सं. 2538, आषाढ़ शु. 10	मूल्य
1100 प्रतियाँ	29 जून 2012	20/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

-: निर्देशन एवं सम्पादक :-

स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

-: प्रबंध सम्पादक :-

जीवन प्रकाश जैन

———सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन———

प्रथम संस्करण-सन् 1989, प्रतिया-3300
द्वितीय संस्करण-सन् 1999, प्रतियाँ-2700

कम्पोजिंग—ज्ञानमती नेटवर्क, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

प्रकाशकीय

-स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश
रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

जैन समाज की कुछ उच्चकोटि संस्थाओं में से दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान एक ऐसी संस्था है जहाँ चर्तुमुखी कार्य-कलापों का संचालन होता है। बड़े-बड़े पुराण ग्रंथों को पढ़ने का आज किसी के पास समय नहीं हैं, इसलिये उन पुराण ग्रंथों के कथानकों को गागर में सागर के समान इस छोटी-सी पुस्तक में समाहित किया गया है। आज की नई पीढ़ी विशेषकर नये-नये आकर्षक साहित्य को पढ़ने में रुचिवान होती है। यह कृति उसी का एक रूप है। प्राचीन कथानक और आधुनिक परिवेश ही इसकी विशेषता है।

भारत वर्ष में लगभग सभी धार्मिक सम्प्रदायों में महाभारत अत्याधिक रुचि से पढ़ी एवं पूजी जाती है। जैन महाभारत में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने इस बृहद् विषय को इस छोटी-सी पुस्तक में जिस प्रकार समाविष्ट किया है यह एक आश्चर्यजनक घटना है। वैसे तो पूज्य माताजी अष्टसहस्री, नियमसार, समयसार, मूलाचार, षट्खण्डागम जैसे उच्च कोटि के ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद एवं संस्कृत टीका करने में अपना अमूल्य समय व्यतीत करती हैं, फिर भी हम लोगों के विशेष आग्रह पर इस प्रकार के रोचक कथानक को लिखकर दिया, यह उनका हमारे ऊपर बड़ा ही उपकार है।

मुझे न केवल आशा है बल्कि पूर्ण विश्वास है कि पाठकगण इस छोटी-सी पुस्तक को पढ़कर अपने जीवन निर्माण में इससे कुछ ग्रहण करेंगें यही इसकी सार्थकता होगी।

आद्य वक्तव्य

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

भगवान नेमिनाथ के चाचा वसुदेव के पुत्र नारायण श्रीकृष्ण हुए हैं। इनकी बुआ कुन्ती के पुत्र पाण्डव थे। इनको हुए आज लगभग साढ़े छियासी हजार वर्ष हुए हैं।

इन पाण्डवों के पिता पाण्डु थे उनके बड़े भाई धृतराष्ट्र की रानी गांधारी से उत्पन्न सौ पुत्र थे जिनके नाम दुर्योधन आदि थे। इन ताऊ-चाचा के पुत्रों कौरवों और पाण्डवों में राज्य के निमित्त से बहुत भयंकर युद्ध हुआ था। इनका इतिहास 'महाभारत' के नाम से प्रसिद्ध है। यह महाभारत जैसा वैदिक संप्रदाय में मान्य है वैसा ही जैन संप्रदाय में भी मान्य है। जैन ग्रंथ पाण्डव-पुराण में इनका विस्तृत वर्णन होने से इस 'पाण्डव-पुराण' को ही 'जैन महाभारत' कहते हैं।

इस जैन महाभारत में 'शांतनु' राजा के पुत्र 'पाराशर' राजा थे न कि ऋषि। इनकी रानी विद्याधर राजा 'जन्हु' की कन्या थी इसका नाम 'गंगा' था अतः इसके पुत्र का नाम 'गांगेय' पड़ गया। इन्होंने दूसरी शादी गुणवती से की थी, जिसके निमित्त से पुत्र गांगेय ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था, ये गांगेय ही भीष्म पितामह कहलाए हैं। इन पाराशर की गुणवती रानी से जन्मे पुत्र व्यास राजा ही थे, ऋषि नहीं। इन 'व्यास' राजा की रानी सुभद्रा से धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ये तीन पुत्र हुए थे। अतः ये विधवा से उत्पन्न नहीं थे न ही 'धृतराष्ट्र' अंधे थे और न ही 'विदुर' दासी के पुत्र थे। प्रत्युत ये तीनों एक माता से उत्पन्न सगे भाई थे।

हाँ, कुन्ती के कुँवारी अवस्था में ही पाण्डु राजा के संयोग से पुत्र

की उत्पत्ति हो जाने से अपवाद के भय से उसे पेटी में बंद कर नदी में छोड़ देने से तथा चम्पापुर के राजा 'भानु' के द्वारा इस पुत्र का लालन पालन होने से यह भानु-सूर्यपुत्र कहलाया था एवं भानु की रानी का नाम 'राधा' होन से इसे 'राधेय' भी कहते हैं, इसका नाम कर्ण रखा गया था। यह कुन्ती के कर्ण से या सूर्य के संयोग से उत्पन्न हुआ हो ऐसा 'जैन महाभारत' नहीं मानता है।

इसी प्रकार 'द्रौपदी' भी राजा द्रुपद की रानी भोगवती की कुक्षि से उत्पन्न हुई थी, न कि अग्नि कुण्ड से। इस द्रौपदी ने स्वयंवर में मात्र अर्जुन को ही वरा था अनंतर भी मात्र अर्जुन की ही पत्नी थी न कि पाँचों पाण्डव की। जैसा कि हरिवंश पुराण में कहा भी है —

"द्रौपदी अर्जुन की स्त्री थी उसमें युधिष्ठिर और भीम की 'पुत्रवधु' जैसी बुद्धि थी और सहदेव, नकुल उसे माता के समान मानते थे।

हाँ, द्रौपदी का जो दु:शासन ने अपमान किया था उससे श्रीकृष्ण आदि अवश्य क्षुभित हुए थे किन्तु द्रौपदी ने बार-बार बदला चुकाने की बात नहीं कही थी।

जैन महाभारत के अनुसार राजा जरासंध प्रतिनारायण था, अर्धचक्रवर्ती होने से चक्ररत्न का स्वामी था और श्रीकृष्ण नारायण थे अत: युद्ध में श्रीकृष्ण के हाथ में इसका चक्ररत्न आया और श्रीकृष्ण ने उसी चक्ररत्न को प्राप्त कर उसका वध कर दिया था।

इसी महायुद्ध में कौरव दल विपक्ष में था और पाण्डव आदि राजा श्रीकृष्ण के साथ थे। जैन इतिहास के अनुसार श्रीकृष्ण नारायण थे अत: वे अर्जुन के सारथि नहीं बने थे। इस महायुद्ध की विभीषिका अनिर्वचनीय कही गई है।

इस 'जैन महाभारत' को पढ़कर प्रत्येक मानव को यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि 'जुआ व्यसन' सर्व अनर्थों की और सर्व दु:खों की खान है तथा जरा-जरा सी जमीन आदि के बारे में आपस में सामंजस्य कर लेना चाहिए न कि कोर्ट-कचहरी में। चाचा-ताऊ के भी भाई-भाई में आपस में सौहार्द्र तो रखना ही चाहिए, अड़ौसी-पड़ौसी के साथ भी सौहार्द्र रखना चाहिए। इसी में सुख-शांति और समृद्धि है तथा परलोक की सिद्धि है।

जैन महाभारत के अनुसार राजा धृतराष्ट्र और विदुर ने जैनश्वरी दीक्षा लेकर अपना-कल्याण कर लिया था। भीष्म पितामह यद्यपि युद्धभूमि में मरे थे फिर भी चारण-ऋद्धिधारी मुनियों के प्रसाद से सल्लेखना से मरकर लौकांतिक देव हो गए थे। दुर्योधन आदि कौरव सबके सब युद्ध में मरकर क्रोध, मान, माया और लोभ की बहुलता से दुर्गति में गये हैं, एवं पाण्डवों ने दीक्षा लेकर तपश्चर्या करके उपसर्ग सहन कर तीन ने तो मोक्ष प्राप्त कर लिया है और नकुल तथा सहदेव ने सर्वार्थसिद्धि में अहमिंद्र पद प्राप्त किया है।

कुन्ती, द्रौपदी आदि ने भी आर्यिका दीक्षा लेकर सोलहवें स्वर्ग में इंद्रादि पद प्राप्त किया है।

जितना संबंध महाभारत में श्रीकृष्ण के साथ पाण्डवों का है उतना ही संबंध श्रीकृष्ण आदि सभी का भगवान नेमिनाथ से रहा है। फिर भी वैदिक महाभारत में श्रीनेमिनाथ के बारे में कोई प्रकरण विशेष नहीं आया है। जैन महाभारत में तो श्रीकृष्ण, बलदेव, वसुदेव, माता देवकी सभी भगवान नेमिनाथ के समवसरण में जाते रहते थे। पाण्डवों ने एवं माता कुन्ती आदि ने तो भगवान के समवसरण में ही दीक्षा ली थी। श्रीकृष्ण ने भी भगवान के समवसरण में अपने भविष्य को और द्वारिका

के दहन आदि को सुना था।

इस छोटी-सी पुस्तिका में अति संक्षेप में इन सभी का वर्णन किया गया है। आप सभी पाठकों को एवं बालक-बालिकाओं को इसे पढ़कर संक्षेप में जैन महाभारत को समझना चाहिए और विशेष जिज्ञासुओं को पाण्डव-पुराण, हरिवंश पुराण अवश्य पढ़ना चाहिए। यह छोटी-सी पुस्तिका आप सभी के सम्यग्दर्शन को निर्मल बनावे यही मेरी मंगल भावना है।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

—प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान—टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि—आसोज सुदी १५ (शरदपूर्णिमा) वि. सं. १९९१, (२२ अक्टूबर सन् १९३४)

जाति—अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र**—गोयल, **नाम**—कु. मैना

माता-पिता—श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत—ई. सन् १९५२ में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा—चैत्र कृ. १, ई. सन् १९५३ को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम—क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा—वैशाख कृ. २, ई. सन् १९५६ को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व—अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं २५० विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि—सन् १९९५ में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा ८ अप्रैल २०१२ को "डी.लिट्." की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा—हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर

जन्मभूमियों का विकास यथा — भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की ३१-३१ फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन १०८ फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा — पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से २१ दिसम्बर २००८ को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा — 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा — जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (१९८२ से १९८५), समवसरण श्रीविहार (१९९८ से २००२), महावीर ज्योति (२००३-२००४) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् १९७२ में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् १९७४ में हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं —

१. सन् १९७२ से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के माध्यम से लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

२. सन् १९७४ से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

३. सन् १९७४ से १९८५ तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

४. सन् १९७४ से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है — कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना एवं नवग्रहशांति जिनमंदिर।

५. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग १५००० ग्रंथ संग्रहीत हैं।

६. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

७. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।

८. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

९. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

१०. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।

११. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।

१२. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना से समन्वित हीरक जयंती एक्सप्रेस।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित भगवान ऋषभदेव दीक्षा तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं शारीरिक सुख की प्राप्ति करें।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत "वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला" की स्थापना सन् 1974 में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् 1990 से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

१. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खीखावली, दिल्ली।
२. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
३. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
४. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
५. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
६. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
७. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-९२
८. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
९. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
१०. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
११. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
१२. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली
१३. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यूएस.ए.
१४. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार(उत्तराखंड)।
१५. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
१६. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन)म.प्र.।
१७. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-४, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

परम संरक्षक

१. श्री माँगीलाल बाबूलाल जैन पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
२. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, ७९२ विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
३. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
४. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
५. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
६. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
७. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
८. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
९. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले), गांधीनगर, दिल्ली।
१०. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
११. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
१२. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
१३. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर (म.प्र.)।
१४. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
१५. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-७।
१६. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
१७. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
१८. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
१९. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., अमरचंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)

संरक्षक

१. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन एवं स्व. श्रीमती आदर्श जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
२. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखर चन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमी चन्द जैन, सनावद (म.प्र.)।
३. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, मुम्बई।
४. श्रीमती अरुणाबेन मन्नूभाई कोटड़िया, सी.पी. टैंक रोड, मुम्बई।
५. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, मुम्बई।
६. श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, मुम्बई।
७. स्व. श्रीमती मथुराबाई खुशाल चन्द्र जैन, द्वारा-श्री रतन चन्द खुशाल चन्द गाँधी के सुपुत्र श्री धन्य कुमार, अशोक कुमार, शिरीश कुमार, धर्मराज गाँधी फलटन (महा.)।
८. श्री शांतिलाल खुशाल चन्द गाँधी, फलटन (सातारा) महा.।
९. श्री अनन्त लाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा.।
१०. श्री हीरालाल माणिकलाल गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।

११. श्री जयकुमार खुशालचंद गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
१२. श्रीमती बदामी देवी मातेश्वरी श्री पदम कुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ.प्र.)।
१३. श्रीमती कमलादेवी ध.प. स्व. श्री महेन्द्र कुमार जैन, घण्टे वाले हलवाई, दरियागंज, नई दिल्ली।
१४. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री श्रवण कुमार जैन, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
१५. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहंशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली।
१६. श्री हुकमीचंद मांगीलाल शाह, धानमंडी, उदयपुर (राज.)
१७. श्री किरण चन्द्र जैन, कटरा धूलियान, चाँदनी चौक, दिल्ली।
१८. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजी. विवेक विहार, दिल्ली
१९. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी), बहराइच (उ.प्र.)।
२०. श्रीमती लीलावती ध.प. श्री हरीश चन्द्र जैन, शकरपुर, दिल्ली।
२१. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एन्कलेव, दिल्ली।
२२. श्री रतिलाल केवलचन्द गाँधी की पुण्य स्मृति में, पापुलर परिवार, सूरत (गुज.)।
२३. श्रीमती भंवरीदेवी ध.प. श्री सदासुख जैन पांड्या की समृति में इन्दर चन्द सुमेरमल जैन पांड्या शिलांग (मेघालय)।
२४. श्रीमती सोहनीदेवी ध.प. श्री तनसुखराय सेठी, फैन्सी बाजार, गौहाटी (आसाम)।
२५. श्रीमती धापूबाई ध.प. श्री कस्तूर चन्द जैन, रामगंज मण्डी (राज.)।
२६. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर गाजियाबाद (उ.प्र.)।
२७. श्रीमती शकुन्तलादेवी ध.प. श्री सुरेशचंद जैन (बर्तन वाले), खुड़बुड़ा मोहल्लका देहरादून (उ.प्र.)।
२८. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म.प्र.)।
२९. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ.प्र.।
३०. श्री मन्नालाल रामलाल जैन डूंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर) म.प्र.।
३१. श्री इन्दर चन्द कैलाश चंद चौधरी, सनावद (म.प्र.)।
३२. श्री प्रकाश चन्द अमोलक चन्द जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
३३. स्व. श्री विमल चन्द जैन, रखबचन्द दसरथ सा, सनावद (म.प्र.)।
३४. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), इन्दौर (म.प्र.)।
३५. श्रीमती सुषमा देवी ध.प. श्री राकेश कुमार जैन, मवाना (मेरठ) उ.प्र.।
३६. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री रमेशचन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ।
३७. श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री पदम प्रसाद जैन एडवोकेट, मेरठ (उ.प्र.)।
३८. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री जिनेन्द्रप्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली।
३९. श्रीमती क्षमादेवी जैन, मधुबन, दिल्ली।
४०. श्रीमती कमलादेवी ध.प. श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, ठाणे (महा.)।
४१. श्री अजित प्रसाद जैन बब्बेजी, श्री राजकुमार श्रवण कुमार जैन, लखनऊ।
४२. श्री प्रभा चन्द गोधा, ४५ भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर-६ (राज.)।

४३. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार जैन, सरधना टैन्ट हाउस, गंजमंडी, सरधना।
४४. श्रीमती रतनसुन्दरी देवी ध.प. श्री वीरचन्द जैन, चूड़ीवाली गली, चौक बाजार, लखनऊ।
४५. डॉ. सुभाषचन्द जैन, रातानाड़ा क्लीनिक, रातानाड़ा बाजार, जोधपुर (राज.)।
४६. श्री प्रमोद कुमार जैन (मुजफ्फरनगर वाले) ३५ एच.वी.रोड, न्यू मार्केट, थरपकना,रांची (बिहार)।
४७. श्री विजेन्द्र कुमार जैन, के.-१/२० मॉडल टाउन, दिल्ली।
४८. श्री कैलाश चंद जैन, ४५ भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर (राज.)।
४९. श्री सुभाषचंद जैन, श्री दि. जैन पार्श्वनाथ चैत्यालय, ४०५ डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली।
५०. श्री सुभाष चन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.।
५१. श्री चन्द्रसेन जैन, द्वारा-सुमेरचन्द, चन्द्रसेन जैन, सब्जी मण्डी, नहटौर (बिजनौर)।
५२. श्री सुधीर कुमार जैन जे.ई., नन्द किशोर जैन, शारदा नहर खण्ड, शाहजहाँपुर।
५३. श्री सुकुमालचंद जैन, मोती ट्रेडिंग कम्पनी, टी.आर. फुकन रोड, फैन्सी बाजार, गौहाटी।
५४. श्री अनिल पुलकित सेठी, बी १/१२२, फेज-२, अशोक विहार, दिल्ली-११००५२।
५५. श्री चन्द्रमोहन बंसल, ११, पूसा रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-५।
५६. श्री गिरधर प्रसाद आमोद प्रसाद जैन, जैन वस्त्रालय, काली मार्केट, सिवान (बिहार)।
५७. श्री सतीश चन्द जैन, ३१ सिविल लाइन, म.नं.-१०, सेक्टर-२, टाइप-५ झांसी।
५८. श्री स्वरूप चन्द कासलीवाल, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
५९. श्री हुलास चन्द सेठी, अयोध्या शुगर मिल्स, राजा का सहसपुर, बिलारी (उ.प्र.)।
६०. श्रीमती किरण देवी जैन ध.प. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, सिविल लाइन,सीतापुर (उ.प्र.)।
६१. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री प्रवीण कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
६२. श्री सूरजमल पुत्र श्री विनीत कुमार जैन, मोहल्ला गंजकटरा पूरणटरा पूरणजाट, जैन विला, मुरादाबाद (उ.प्र.)।
६३. स्व. श्री शिखर चन्द जैन, 'टिम्बर कमीशन एजेन्ट', शंकरगंज, हापुड़ (उ.प्र.)।
६४. श्रीमती राजेश्वरी जैन मातेश्वरी श्री राकेश जैन ३१, सिविल लाईन, सीतापुर।
६५. श्री राजकुमार जैन, मैसर्स रविदत्त प्रेमचन्द जैन बारदाने वाले, श्यामगंज, बरेली।
६६. श्री बलवीर जैन, द्वारा-जानकी एक्सटेंशन रिफाइनरी, गाँधीगंज, शाहजहाँपुर।
६७. श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर (नागालैंड)।
६८. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, ईदगाह कालोनी, आगरा (उ.प्र.)।
६९. श्री पोखपाल जैन, द्वारा-नावेल्टी मेटल इंडिया, मानसिंह गेट, अलीगढ़ (उ.प्र.)।
७०. श्रीमती रश्मि जैन ध.प. श्री विजय कुमार जैन, दरियागंज, नई दिल्ली।
७१. श्रीमती विमला देवी ध.प. श्री प्रमोद कुमार जैन इंजी., शाहजहाँपुर (उ.प्र.)।
७२. स्व. श्रीमती कैलाशवती जैन ध.प. श्री कैलाश चन्द जैन इंजी., तोपखाना बाजार, मेरठ।
७३. श्रीमती अरुण कुमार नांद्रेकर ध.प. भाऊ साहेब नांद्रेकर, मुलुन्ड (वेस्ट) मुम्बई।
७४. श्री भागचन्द मनीष कुमार ठोलिया, द्वारा-किरन एजेंसी, पो. बुरहानपुर, (म.प्र.)।

७५. श्री कैलाशचन्द राजकुमार जैन रावंका, पो. बिसवां (सीतापुर) उ.प्र.।
७६. श्रीमती विद्यावती जैन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली।
७७. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) एवं सुपुत्र श्री मदन कुमार, प्रदीप कुमार एवं प्रवीण कुमार जैन, धर्मपुरा, गाँधीनगर, दिल्ली।
७८. श्रीमती अरुणा जैन, ध.प. प्रवीन्द्र कुमार जैन, प्रीतमपुरा, दिल्ली।
७९. श्रीमती पुष्पादेवी, ध.प. महेन्द्र कुमार जैन, पुष्पांजली एन्क्लेव, दिल्ली।
८०. श्री बाबूलाल तोताराम जैन, भुसावल (महा.)।
८१. डॉ. अनुपम जैन, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)।
८२. श्री विनय कुमार जैन, ज्वैलर्स, दरीबाकलां, दिल्ली।
८३. स्व. श्री आनन्द प्रकाश जैन 'शान्तिप्रिय', जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.।
८४. श्रीमती राजुलबाई ध.प. श्री नेमीचन्द जैन लोहाड़े, पो. कोपरगाँव (महा.)।
८५. श्री धन्नालाल गोधा, मल्हारगंज, इंदौर (म.प्र.)।
८६. श्री सुनील कुमार मनोज कुमार जैन, झिलमिल कालोनी, दिल्ली।
८७. श्रीमती आशा जैन ध.प. श्री राजेश कुमार जैन बरुआ सागर (उ.प्र.)।
८८. श्री पारसमल डूंगरमल जी पाटनी पो. मेड़तासिटी, नागौर (राजस्थान)।
८९. श्री अनिल कुमार जैन (गुड़गांव वाले) प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-९२।
९०. श्रीमती कृष्णा बाई नेमीनाथ जैन, पी. वाले, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
९१. श्रीमती मंजूलता जैन ध.प. श्री प्रभात चन्द गोधा, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
९२. श्री प्रमोद कुमार जैन, पारस प्रिन्टर्स, शाहदरा-दिल्ली।
९३. श्री चांदमल अनिल कुमार सरावगी, किशनगंज (बिहार)।
९४. कुमारी अदिति सुपुत्री श्री अपोलो जी जैन सौगानी, इंदौर।
९५. श्रीमती मंजूलता ध.प. प्रभाचन्द गोधा-नया बाजार, अजमेर।
९६. श्री सुचेद्र कुमार शैलेन्द्र कुमार जैन, डाल्टनगंज (झारखंड)।
९७. श्रीमती जतनदेवी लक्ष्मीचंद जैन, चेन्नई (तमिलनाडु)।
९८. श्रीमती सखाई जैन ध.प. श्री जीतमल जैन, मड़ाना (कोटा) राज.।
९९. श्री मोहित जैन पुत्र मुकेश जैन, जगन्नाथ जैन पहाड़िया, फतेहपुर (शेखावटी) राज.।
१००. श्री नरेश जैन बंसल, गुड़गाँवा (हरि.)।
१०१. श्रीमती रतनबाई ध.प. राजेन्द्र प्रकाश कोठिया, कोटा (राज.)।
१०२. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री अजीत कुमार जैन, भिवाड़ी (राज.)।
१०३. श्रीमती प्रेमलता जैन ध.प. श्री सुशील कुमार जैन, मलाड़ (मुम्बई)।
१०४. श्री राजेन्द्र कुमार पचौलिया, इंदौर (म.प्र.)।
१०५. स्व. श्री मोहनलाल हेमचंद गांधी, सतारा (महा.)।
१०६. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)
१०७. डॉ. विमला जैन "विमल" ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

जैन महाभारत

(१)

कुरुवंश परम्परा :

कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर नगर में परम्परागत कुरुवंशियों का राज्य चला आ रहा था। उन्हीं में शान्तनु नाम के राजा हुए। उनकी "सबकी" नाम की रानी से 'पाराशर' नाम का एक पुत्र हुआ। रत्नपुर नगर के "जन्हु" नामक विद्याधर राजा की "गंगा" नामकी कन्या थी। विद्याधर राजा ने पाराशर के साथ गंगा का विवाह कर दिया। इन दोनों के गांगेय—भीष्माचार्य नाम का पुत्र हुआ। जब गांगेय तरुण हुआ तब पाराशर राजा ने उसे युवराज पद दे दिया।

किसी समय राजा पाराशर ने यमुना नदी के किनारे क्रीड़ा करते समय नाव में बैठी सुन्दर कन्या देखी और उस पर आसक्त होकर धीवर से उसकी याचना की, किन्तु उस धीवर ने कहा कि आपके पुत्र गांगेय को राज्य पद मिलेगा तब मेरी कन्या का पुत्र उसके आश्रित रहेगा अतः

मैं कन्या को नहीं दूँगा। राजा वापस घर आकर चिंतित रहने लगे। किसी तरह गांगेय को पिता की चिंता का पता चला। तब वे धीवर के पास जाकर बोले कि तुम अपनी कन्या को मेरे पिता को ब्याह दो मैं वचन देता हूँ कि आपकी पुत्री का पुत्र ही राज्य करेगा फिर भी धीवर ने कहा कि आपके पुत्र, पौत्र कब चैन लेने देंगे तब गांगेय ने उसी समय आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया और धीवर को संतुष्ट कर दिया।

धीवर ने कहा कि हे कुमार! मैं किसी समय यमुना के किनारे गया और एक सुन्दर कन्या देखी। निःसंतान मैंने उस कन्या को उठा लिया उसी समय आकाशवाणी हुई कि "कल्याणमय रत्नपुर नगर में रत्नांगद राजा की रत्नावती रानी के यह कन्या उत्पन्न हुई है, उसके किसी विद्याधर शत्रु ने इस कन्या का हरण कर यहाँ छोड़ दिया है" इस प्रकार की वाणी सुनकर मैं उसे ले आया, उसका गुणवती नाम रखा और पालन किया है। गांगेय उसकी कुलशुद्धि सुनकर प्रसन्न हो गये और पाराशर से उसका ब्याह हो गया। उसका दूसरा नाम "योजनगंधा" था क्योंकि उसके शरीर की सुंगध दूर तक फैलती थी। पाराशर की गुणवती रानी से "व्यास" नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। व्यास की रानी सुभद्रा थी, इन दोनों से धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

हरिवंश परम्परा :

चम्पापुरी के राजा सिंहकेतु की वंश परम्परा में हरिगिरि, हेमगिरि आदि अनेक राजा हुए। अनंतर इस वंश में एक 'यदु' नाम के राजा हुए हैं। इसी परम्परा में शूर और वीर ये दो राजा हुए। शूर राजा शौरीपुर में राज्य करते थे और वीर राजा मथुरा में रहते थे। शूर राजा की रानी का नाम सुरसुन्दरी था। उसके अंधकवृष्टि नाम का पुत्र हुआ।

अंधकवृष्टि की रानी का नाम भद्रा था। इन दोनों के समुद्रविजय, स्तमितसागर, हिमवान, विजय, अचल, धारण, पूरण, सुमुख, अभिनंदन और वसुदेव ऐसे दशधर्म के सदृश दश पुत्र हुए तथा कुन्ती और माद्री नाम की दो पुत्रियाँ हुईं। इनमें से समुद्रविजय बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ के पिता थे और वसुदेव बलभद्र एवं श्रीकृष्ण के पिता थे अर्थात् नेमिनाथ और श्रीकृष्ण की ये कुन्ती और माद्री बुआ थीं। मथुरा नगरी में सुवीर (वीर) राजा रहता था उसकी पत्नी का नाम पद्मावती था। इन दोनों के भोजकवृष्टि नाम का पुत्र हुआ, तरुण होने पर इनक ब्याह हुआ, रानी का नाम सुमति था। इन दोनों के उग्रसेन, महासेन और देवसेन ये तीन पुत्र हुए और गांधारी नाम की कन्या हुई।

हरिवंश और कुरुवंश का संबंध :

कुरुवंशी व्यास के पुत्र धृतराष्ट्र का विवाह भोजकवृष्टि की पुत्री गांधारी के साथ सम्पन्न हुआ। धृतराष्ट्र ने किसी समय पाण्डु के साथ कुन्ती का विवाह करने के लिए अंधकवृष्टि से कहा, किन्तु कुन्ती के पिता ने पाण्डु को पाण्डु रोग के कारण कन्या नहीं दी।

किसी समय वज्रमाली नाम का विद्याधर हस्तिनापुर के वन में क्रीड़ा करने आया और उसकी अँगूठी वहीं गिर गई। इधर पाण्डु राजा भी उस वन में घूम रहे थे। उन्होंने वह अँगूठी देखी और उठा ली। जब विद्याधर वापस आकर खोजने लगा, तब पाण्डु ने वह अँगूठी उसे दिखाई और पूछा मित्र इससे क्या काम होता है? उत्तर में विद्याधर ने कहा मित्र! यह इच्छानुसार रूप बनाने वाली है। पाण्डु ने कहा मित्र! कुछ दिन यह अँगूठी मेरे हाथ में रहने दो, उसने यह बात मान ली।

कर्ण का जन्म :

इधर पाण्डु कुन्ती के रूप पर आसक्त हो अदृश्य रूप से कुन्ती के महल में चला गया और उसे अपने वश में करके प्रतिदिन अदृश्यरूप से जाने गला। पाण्डु के समागम से कुन्ती को गर्भ रह गया और पुत्र का जन्म हुआ। तब गुप्त रखते हुए भी प्रकट हो जाने से राजा अंधकवृष्टि ने उस बालक को कुण्डल आदि से अलंकृत कर संदूकची में बंद कर यमुना नदी में छोड़ दिया।

चम्पापुर के भानु राजा को वह पेटी प्राप्त हुई, उन्होंने अपनी पत्नी राधा को पुत्र दे दिया। उस समय राधा ने कान खुजाया इसलिए भानु राजा ने पुत्र का नाम "कर्ण" रख दिया। अनंतर राजा अंधकवृष्टि ने पाण्डु राजा के साथ कुन्ती और माद्री दोनों पुत्रियों का संबंध कर दिया।

पाण्डवों का जन्म :

विवाह के कुछ दिन बाद कुन्ती ने क्रम से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन ऐसे तीन पुत्रों को जन्म दिया। माद्री से नकुल और सहदेव ऐसे दो पुत्र हुए। ये पाँचों भाई पाण्डव कहलाने लगे। लोग कर्ण को कुन्ती के कान से उत्पन्न हुआ मानते हैं या सूर्य के सेवन से कुन्ती को कर्ण नाम का पुत्र हुआ "ऐसा कहते हैं" यह कथन युक्ति संगत नहीं है। पाण्डु के छोटे भाई विदुर का विवाह देवक राजा की कन्या कुमुदवती के साथ हुआ था।

दुर्योधन आदि का जन्म :

धृतराष्ट्र और गांधारी के दुर्योधन आदि को लेकर क्रमशः सौ पुत्र उत्पन्न हुए जो कुरुवंशी होने से कौरव कहलाये। कौरव-पाण्डव के पिता धृतराष्ट्र और पाण्डु थे, इनके पिता व्यास थे। गांगेय इन व्यास के बड़े

भाई होने से इन कौरवों-पाण्डवों के पितामह थे। उन्होंने इन कौरव-पाण्डवों का रक्षण किया और यथोचित शिक्षण दिया। द्रोणाचार्य नामक किन्हीं द्विज श्रेष्ठ ने इन सब पुत्रों को धनुर्वेद विद्या सिखाई। इन सभी में से अुर्जन में विशेष विनय होने से गुरु की कृपा भी उस पर अधिक हो गई और विशेष योग्यता से अर्जुन ने गुरु से शब्दभेदी महाविद्या सीख ली।

पाण्डु का वैराग्य :

किसी समय राजा पाण्डु ने वन में हरिणी से आसक्त एक हरिण को अपने बाण से मार दिया उस समय आकाश से ध्वनि हुई "राजन्"! यदि वन में निरपराधी जन्तु को राजा ही मारेंगे तो उनका रक्षक कौन होगा? इस वाणी को सुनकर राजा के मन में पश्चाताप से साथ वैराग्य उत्पन्न हो गया। अनंतर उन्होंने सुव्रतमुनि के पास जाकर उपदेश सुना औ मुनि के मुख से अपनी आयु तेरह दिन की समझकर धृतराष्ट्र आदि को अपने घर में यथोचित धर्म शिक्षा देकर सब परिग्रह का त्याग कर गंगा के किनारे गये। वहाँ आजन्म आहार का त्यागकर सल्लेखना से मरण किया और सौधर्म स्वर्ग में देव हो गये। रानी माद्री विरक्त होकर नकुल और सहदेव पुत्रों को कुन्ती को सौंपकर सल्लेखना से मरकर पहले स्वर्ग में उत्पन्न हुईं।

धृतराष्ट्र का वैराग्य :

किसी समय धृतराष्ट्र राजा ने वन में मुनिराज से धर्म श्रवण कर प्रश्न किया भगवन्! इस कौरव राज्य के भोक्ता मेरे पुत्र दुर्योधन होंगे या पाण्डु पुत्र? उत्तर में सुव्रतमुनि ने कहा राजन्! राज्य के निमित्त से तेरे पुत्र दुर्योधन आदि और पाण्डवों के बीच महायुद्ध होगा। उसमें तेरे पुत्र मारे जायेंगे और पाण्डव राज्य में प्रतिष्ठित होंगे। यह सुनकर चिन्तित हुए

धृतराष्ट हस्तिनापुर वापस आये और गांगेय को बुलाकर अपना अभिप्राय प्रकट कर उनके तथा द्रोणाचार्य के समक्ष अपने पुत्रों व पांडवों को राज्य समर्पण कर दिया। अनंतर अपनी माता सुभद्रा के साथ वन में जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

राज्य विभाजन :

अनंतर किसी समय श्री गांगेय ने आपस में कौरव-पाण्डवों का कुछ विरोध देखकर बैर नष्ट करने के लिए युक्ति से आधा-आधा राज्य विभक्त कर कौरव और पाण्डवों को दे दिया। स्वभावतः कौरव हृदय में दुष्ट और वाणी में मिष्ट थे। वे क्रोध से पाण्डवों के प्राण लेने की इच्छा रखते थे। क्रीड़ाओं में अनेक बार कौरवों ने भीम को मारने का प्रयत्न किया किन्तु वे पुण्योदय से भीम का कुछ भी न बिगाड़ सके प्रत्युत स्वयं ही अपमानित होते रहे यहाँ तक कि उन्होंने एक बार भीम को भोजन में विष भी दिला दिया किन्तु दैवयोग से उसके लिए वह महाविष भी अमृत तुल्य हो गया।

द्रोणाचार्य द्वारा शिष्य परीक्षण :

किसी समय गुरु द्रोणाचार्य कौरव-पाण्डवों को साथ लेकर वन में गये वहाँ उन्होंने उन्नत शाखा पर बैठे हुए काक को देखकर कहा जो इस काक की दक्षिण आँख को लक्ष्य कर बेधित करेगा वह धनुर्धरों में श्रेष्ठ समझा जायेगा, सब असमर्थ रहे, अंत में अर्जुन ने अपनी जंघा को हस्त से ताड़ित किया उसे सुनकर जैसे ही कौवे ने नीचे देखा वैसे ही अर्जुन ने बाण से उसकी दाहिनी आँख को बेध दिया तब अर्जुन की खूब प्रशंसा हुई।

भील की गुरु भक्ति :

किसी समय वन में अर्जुन ने एक कुत्ते को देखा उसका मुख बाण प्रहार से संरुद्ध था। उसे देख अर्जुन ने सोचा यह शब्दबेधी धनुर्विद्या गुरु ने मुझे ही दी है इसका जानकार यहाँ और कौन है ? खोजते-खोजते एक भील मिला, उससे वार्तालाप होने से उसने कहा— मेरे गुरु द्रोणाचार्य हैं, मैंने उन्हीं से यह विद्या सीखी है। अर्जुन के आश्चर्य का पार नहीं रहा, तब भील ने वन में बनाये हुए स्तूप के पास जाकर अर्जुन को दिखाया और कहा मेरे गुरु ये ही हैं, मैंने इन्हीं में द्रोणाचार्य की कल्पना कर रखी है। मैं इसी स्तूप को गुरु मानकर उपासना करके शब्दभेदी धनुर्विद्या में निपुण हुआ हूँ।

अर्जुन ने हस्तिनापुर वापस आकर गुरु से सारी बात बता दी और कहा कि वह पापी भील निरपराध जन्तुओं को मारकर पाप कर्म कर रहा है। आपको इसे रोकना चाहिये। द्रोणाचार्य अर्जुन के साथ वहाँ गये और उस भील ने उन्हें साक्षात् द्रोणाचार्य जानकर साष्टांग नमस्कार किया, बहुत ही भक्ति प्रदर्शित की तब द्रोणाचार्य ने कहा- "मैं एक वस्तु तुमसे माँगू, तुम दोगे", उत्तर में उसने सहर्ष स्वीकार किया, तब गुरु ने कहा "दाहिने हाथ का अँगूठा मुझे दे दो।" उस भील ने उसी समय अँगूठा काटकर दे दिया। अब वह बाण चलाने में असमर्थ हो गया और जीव हिंसा से बच गया।

कौरव-पाण्डव विरोध :

कौरव और पाण्डव आधा-आधा राज्य भोगते हुए प्रतिदिन सभा में आकर एकत्र होकर बैठते थे। दुष्ट कौरव अब स्पष्ट बोलने लगे थे कि "हम सौ हैं और ये पाँच ही हैं परन्तु आधा-आधा राज्य हम दोनों को मिला है, यह अन्याय हुआ है। वास्तव में इस राज्य में एक सौ पाँच विभाग करके उत्तम साम्राज्य का उपभोग हम लोग करेंगे। कभी-कभी भीम, अर्जुन आदि क्षुभित हो उठते थे, तो अतिशय शांत धर्मप्रिय युधिष्ठिर इन लोगों को शांत कर लेते थे।

लाक्षागृह दाह :

किसी समय हस्तिनापुर में कपटी दुर्योधन ने लाख का एक दिव्य भवन बनवाया और पितामह से कहा कि एक साथ रहने से अशांति होती है अतः पाण्डवों को उस गृह में भेज दो। सरल परिणामी गांगेय ने उन्हें भेज दिया। पाँचों पाण्डव निष्कपट वृत्ति से माता कुन्ती के साथ वहाँ लाक्षागृह में रहने लगे।

दयालु विदुर ने (चाचा ने) यह कपट जान लिया और युधिष्ठिर आदि को आदेश दिया कि पता नहीं वह लाख का मकान क्यों बनवाया है ? तुम्हें इन दुर्योधन आदि पर विश्वास नहीं करना चाहिए। अनंतर वे वन में चले गये वहाँ स्थिर चित्त कर बहुत देर तक उपाय सोचा और लाक्षागृह से वन तक एक सुरंग खुदवा दी। फिर वह गूढ़ सुरंग ढक दी। विदुर राजा ने स्वयं भी वह सुरंग नहीं देखी और पाण्डवों को भी सूचना नहीं दी थी। किसी समय रात्रि में दुर्योधन ने किसी दुष्ट ब्राह्मण से उस भवन में आग लगवा दी। वहाँ सोते हुए पाण्डव जाग गये। चारों तरफ आग की लपटों को देख किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। महामंत्र का जाप करने लगे, इतने में इधर-उधर घूमते हुए उन्हें ढकी हुई सुरंग मिल गई और पुण्योदय से वे माता सहित सुरंग से बाहर आ गये। श्मशान से छह

मुर्दे लाकर उसमें डालकर वे लोग अन्यत्र चले गये। प्रातः काल दुर्योधन ने कपट से रोना-धोना प्रारंभ किया किन्तु गांगेय आदि ने कह दिया कि बस! यह तुम्हारी ही कूटनीति है। इस घटना से प्रजा भी दुर्योधन आदि से ग्लानि करने लगी।

अपने भानजों की लाक्षागृह दाह से मरण सुनकर समुद्रविजय, वसुदेव आदि दुर्योधन पर बहुत कुपित होते हुए युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये किन्तु किसी विद्वान ने उन्हें उस समय रोक दिया।

पाण्डवों को देशाटन :

उधर पाण्डव वन में से जाते हुए गंगा नदी के किनारे पहुँचे और उसे पार करने के लिए नाव में जा बैठे। नाव चलकर सहसा नदी के बीच में नाम रुक गई। मल्लाह से पूछने पर उन्हें मालूम हुआ कि यहाँ तुण्डिका नामक जल देवी रहती है जो नरबलि चाहती है, इससे सब चिंतित हो गये। आपस में बहुत कुछ परामर्श करने के बाद अंत में ''भीम'' नदी में कूद पड़े और युद्ध में तुण्डिका को परास्त कर अथाह जल में तैरते हुए किनारे जा पहुँचे। तत्पश्चात् वे ब्राह्मण वेश में चलकर कौशिकपुरी पहुँचे वहाँ पर वर्ण राजा के द्वारा आदर-सत्कार आदि को प्राप्त हुए। आगे अनेकों देशों में परिभ्रमण करते हुए इन लोगों के साथ अनेकों कन्याओं के पाणिग्रहण भी हो गये।

बक राजा का मर्दन :

चलते-चलते वे पाण्डव श्रुतपुर नगर में गये, वहाँ उन्होंने जिन-मंदिर में अनेक जिन प्रतिमाओं का पूजन किया। रात्रि में एक वैश्य के घर में ठहर गये, इतने में ही वैश्य की पत्नी रोने लगी। कुन्ती के प्रश्न

करने पर वैश्य की पत्नी ने कहा कि इस नगर का ''बक'' नाम का राजा है, वह मांसाहारी होने से अब तो मनुष्य का मांस खाने लगा है। जब नगर के बालक कम हो गये तब रसोइये से सारा भेद खुल जाने से प्रजाजनों ने मिलकर राजा को ग्राम से निकाल दिया और लोगों ने ऐसी व्यवस्था बनाई कि प्रतिदिन एक घर से एक मनुष्य दिया जाये। आज बारह वर्ष हो गये हैं वह राजा राक्षस के समान भयंकर हो गया है, आज मेरे पुत्र की बारी है और मेरा एक ही पुत्र है। ऐसा कहकर रोने लगी। इस घटना को सुनकर भीम ने बकराज के पास जाकर अपनी बाहुओं से उसके साथ भयंकर युद्ध करके बक राजा को समाप्त कर दिया। तब सारे समाज ने भीम का जय-जयकार किया। अनेकों धर्म उत्सव करते हुए ये पाण्डव वर्षाकाल व्यतीत कर यहाँ से निकल गये।

श्री वसुदेव (२)

वसुदेव का देशाटन :

राजा समुद्रविजय ने अपने आठों भाइयों का विवाह कर दिया था, मात्र वसुदेव अविवाहित थे। कामदेव के रूप से सुन्दर वसुदेव बालक्रीड़ा से युक्त हो शौर्यपुरी नगरी में इच्छानुसार क्रीड़ा किया करते थे। तब कुमार वसुदेव को देखने की इच्छा से नगर की स्त्रियों की बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हो जाती थी। उस समय स्त्रियाँ घर के काम-काज तो क्या बालकों को भी अव्यवस्थित छोड़कर भाग निकलती थीं।

तब मात्सर्यबुद्धि वाले कुछ लोग राजा समुद्रविजय के पास आकर बोले—हे नाथ! हम लोगों को अभयदान देकर हमारी प्रार्थना

सुनिये! आपके राज्य में हम लोग सब प्रकार सुखी हैं किन्तु जब कुमार वसुदेव शहर में घूमने निकलते हैं तब अच्छे-अच्छे घरानों की स्त्रियाँ भी पागल सी हो जाती हैं, कोई बालक को दूध पिलाते हुए उसे छोड़कर ही बाहर आ जाती है, कोई पैरों के नूपुर गले में डाल कर और गले का हार पैरों में लपेटकर भागती है। यद्यपि कुमार का हृदय निर्विकार है, अति स्वच्छ है, फिर भी महिलाओं की इस उद्विग्नता के बारे में आपको कुछ उपाय सोचना ही होगा।

राजा समुद्रविजय ने उन्हें सान्त्वना देकर विदाकर, अच्छी तरह सोचकर उपाय निकाला और जब वसुदेव ने आकर उन्हें प्रणाम किया तब वे उन्हें गोद में बिठाकर बड़े प्यार से बोले-वत्स! तुम उद्यान में और शहर में क्रीड़ा करके थक गये हो, देखो तुम्हारे मुख की कांति भी फीकी पड़ गई है।...... अब आज से तुम बाहर न भ्रमण कर हमारे अन्तःपुर के बगीचे में ही क्रीड़ा करो, देखो वहाँ कृत्रिम पर्वत, नदियाँ, सरोवर, पुष्पवाटिका आदि अनेक मनोहर स्थल हैं।

इस प्रकार समझा-बुझाकर महाराज कुमार वसुदेव को हाथ पकड़कर उन्हें अपने महल में ले आये। साथ ही स्नान आदि करके भोजन किया। युवराज वसुदेव भी तब से महारानी शिवा देवी के बगीचों में नाट्य-संगीत आदि विनोदों से अपने मित्रों के साथ क्रीड़ा करने लगे।

एक दिन कुब्जादासी महारानी शिवादेवी के लिए विलेपन लेकर जा रही थी सो कुमार ने उसे तंग कर उससे वह छीन लिया। इससे रुष्ट होकर कुब्जा ने कहा, कुमार! ऐसी ही चेष्टाओं से तो तुम इस बंधनागार को प्राप्त हुए हो, तब वसुदेव ने आश्चर्य से पूछा! कुब्जे तेरे कहने का क्या तात्पर्य है ? तब उसने राजा के अंतरंग सलाह की सारी बात बता दी।

कुमार यह सुनकर कुछ खिन्न हो मंत्र-सिद्धि का बहाना कर एक नौकर को साथ लेकर घर से तथा नगर से दूर श्मशान में चले गये। वहाँ रात्रि में दूर से एक मुर्दे को जलाकर जोर से बोले-हे नगरवासी जनों! और महाराजा समुद्रविजय! आप सब सुखपूर्वक रहो, मैं श्मशान में अग्नि में प्रवेश कर गया हूँ। ऐसा कहकर अन्य दिशा में चले गये।

किंकर ने कुमार के जल जाने की बात समझकर घर आकर महाराज से निवेदन कर दी। इस घटना से दुःखी हो ये लोग श्मशान में आये और भाई के वस्त्रालंकार आदि यत्र-तत्र देखकर "युवराज वसुदेव ने आत्मघात कर लिया है" ऐसा समझकर बहुत ही रुदन करने लगे।

इधर वसुदेव ब्राह्मण का वेश रखकर विजयखेट आदि नगरों में भ्रमण करने लगे। इस भ्रमण काल में उन्होंने कन्याओं के साथ विवाह किये हैं। स्वयंवर में वीणा-वादन में जीतकर गंधर्वसेना के साथ विवाह किया है। इस प्रवासकाल में अनेक राजाओं ने इन्हें अपनी कन्या देकर बहुत कुछ आदर-सत्कार किया है।

बलदेव का जन्म :

एक समय वसुदेव ने अपने कला कौशल द्वारा अरिष्टपुर नामक नगर में राजा रुधिर की कन्या रोहिणी के स्वयंवर मण्डप में जाकर उसका वरण किया और दाम्पत्य जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करने लगे।

किसी समय रोहिणी अपने पति वसुदेव के साथ कोमल शय्या पर शयन कर रही थी। रात्रि के पिछले प्रहर में चार शुभ स्वप्न देखे- सफेद हाथी, समद्र, पूर्ण चंद्र और अपने मुख में प्रवेश करता हुआ सफेद सिंह देखा।

प्रातःकाल पतिदेव से स्वप्नों का फल ज्ञात हुआ कि तुम्हें शीघ्र ही अद्वितीय वीरपुत्र प्राप्त होगा। फलस्वरूप नौ माह पूर्ण होने पर रोहिणी ने शुभ नक्षत्रों में सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया। जिसका नाम रखा गया "राम" इन्हीं को आगे चलकर 'बलराम' के नाम से जाना गया है।

ये बलराम श्रीकृष्ण के बड़े भाई थे।

रोहिणी के पति राजा वसुदेव अन्य अनेक श्रेष्ठ राज पुत्रों को शस्त्र विद्या का उपदेश देने हेतु सूर्यपुर नगर में रहने लगे। किसी दिन कुमार वसुदेव धनुर्विद्या में प्रवीण अपने कंस आदि शिष्यों के साथ राजा जरासन्ध को देखने की इच्छा से राजगृह नगर गए वहाँ जरासंध ने घोषणा कर रखी थी कि मेरे शत्रु सिंहपुर के राजा सिंहरथ को बंदी बनाकर जो मेरे सामने लावेगा उस परमवीर को मैं अपनी जीवद्यशा नाम की पुत्री तथा इच्छित राज्य समर्पित करूँगा।

वसुदेव इस घोषणा को सुनकर कंस के साथ युद्धस्थल में पहुँच गए उसी समय कंस ने गुरु की आज्ञा से उछल कर शत्रु को बाँध लिया। कंस की चतुराई से प्रसन्न होकर वसुदेव ने उससे कहा कि वत्स! वर माँग! कंस ने उत्तर दिया कि हे आर्य! अभी वर धरोहर में रखिए, समय पड़ने पर माँग लूँगा। वसुदेव ने शत्रु को ले जाकर राजा जरासंध को दे दिया।

राजा जरासंध प्रसन्न होकर वसुदेव से बोले कि तुम मेरी पुत्री जीवद्यशा के साथ विवाह करो। इससे उत्तर में वसुदेव ने कह दिया कि शत्रु को कंस ने पकड़ा है, मैंने नहीं।

कंस का परिचय :

राजा ने उसे तुरन्त अपनी कन्या नहीं दे दी, बल्कि सबसे पहले उन्होंने कंस की जाति पूछी।

कंस ने कहा कि हे राजन्! मेरी माता मंजोदरी कौशाम्बी में रहती है और मदिरा बनाने का कार्य करती है।

कंस की आकृति देखकर जरासंध को विश्वास नहीं हुआ कि मदिरा बनाने वाली का पुत्र है अतः उन्होंने आदमी भेजकर शीघ्र ही कौशाम्बी से मंजोदरी को बुलवाय। मंजोदरी कुछ समय गई थी अतः साथ में एक मंजूषा एवं कंस के नाम की मुद्रिका लेकर वहाँ जा पहुँची।

राजा ने उससे कंस का परिचय पूछा तो वह कहने लगी–

हे राजन्! मैंने यमुना के प्रवाह में इसे मंजूषा के अंदर पाया था मुझे इस शिशु पर दया आई अतः मैंने हजारों उलाहने सुनकर भी इसका पालन–पोषण किया है। मैं इसकी माता नहीं हूँ यह लीजिये मंजूषा जिसमें मैंने इसे पाया था।

राजा ने मंजूषा खोली तो उसमें कंस के नाम की मुद्रिका दिखी। जरासंध उसे लेकर बांचने लगा। उसमें लिखा था–

यह मथुरा के राजा उग्रसेन और रानी पद्मावती का पुत्र है जब यह गर्भ में स्थित था तभी से अत्यंत उग्र था। इसकी उग्रता से भयभीत होकर ही इसे छोड़ा गया है, यह जीवित रहे तथा इसके कर्म ही इसकी रक्षा करें।

मुद्रिका को पढ़कर राजा समझ गए कि यह तो मेरा भानजा है अतः उसने हर्षित होकर अपनी कन्या जीवद्यशा के साथ विवाह कर दिया।

कंस का पूर्वभव :

कंस अपने पूर्वभव में वशिष्ठ नाम के महा तपस्वी दिगम्बर मुनिराज थे। एक बार वे विहार करते हुए मथुरा आए तब राजा तथा

प्रजा ने उनकी खूब पूजा की।

वे मुनिराज एक मास के उपवास का नियम लेकर तपस्या कर रहे थे। सारी प्रजा उन्हें पारणा कराने की इच्छुक थी, परन्तु राजा उग्रसेन ने सारे नगरवासियों से याचना की कि मासोपवासी मुनिराज को पारणा मैं ही कराऊगाँ और इसी भावना से उसने मथुरा में रहने वाले सब श्रावकों को आहार देने से रोक दिया। मुनिराज तीन बार एक-एक मास का उपवास करके पारणा के लिए शहर में आए किन्तु राजकाज में संलग्न राजा तीनों बार आहार देना ही भूल गया। अंत में मुनिराज श्रम से पीड़ित हो वन में जाकर विश्राम करने लगे।

उन्हें वापस जाते देखकर किसी नगर निवासी ने कहा कि बड़े दुःख की बात है कि राजा स्वयं मुनि को आहार देता नहीं है तथा दूसरों को मना कर रखा है। यह बात सुनकर मुनिराज को राजा के प्रति एकदम क्रोध आ गया अतः उन्होंने निदान किया कि मैं इस राजा उग्रसेन का पुत्र होकर इसका बदला चुकाऊँ। निदान के कारण वे मुनिपद से भ्रष्ट हो मिथ्यादृष्टि बन गए और उसी समय मरकर राजा उग्रसेन की रानी पद्मावती के गर्भ में आ गए।

जब कंस का जीव पद्मावती के गर्भ में था तब वह सूखकर कांटा हुई जा रही थी। एक दिन उग्रसेन ने उससे कहा-प्रिये! तुम्हारा दोहला क्या है ? मुझे बताओ तुम इतनी कमजोर क्यों होती जा रही हो? तब पद्मावती ने बड़े दुःखपूर्वक बताया कि हे नाथ! गर्भ के दोष से मुझे अत्यंत अशोभन दोहला हुआ है, मेरी इच्छा है कि मैं आपका पेट फाड़कर आपका खून पीऊँ।

किन्तु इसमें माता का क्या दोष ? जैसा पुण्यकर्मी या पापकर्मी बालक गर्भ में आता है उसी के अनुसार माता को दोहला होता है। चूँकि वह बालक गर्भ से ही अत्यंत रौद्र था इसलिए रानी पद्मावती ने पुत्र जन्म के बाद भय से उसे काँसे की मंजूषा में बंद कर एकांत में यमुना में छुड़वा दिया।

इधर जब कंस को यह सब मालूम हुआ तो उसे बड़ा क्रोध आया। उसने विवाह के बाद पहले तो जरासंध से मथुरा का राज्य माँग लिया और जरासंध ने दे भी दिया। वे अर्धचक्री तो थे ही तीन खण्ड की पृथ्वी पर उनका शासन था। बस फिर क्या था, कंस को तो पिता से बदला लेने का स्वर्ण अवसर मिल गया। वह जीवद्यशा पत्नी को साथ लेकर मथुरा आ गया। निर्दयी तो वह स्वभाव से ही था वहाँ जाकर उसने पिता उग्रसेन के साथ युद्ध ठान दिया तथा उसे बाँधकर नगर के मुख्य द्वार के ऊपर कैद कर दिया और स्वयं राजसिंहासन का अधिकारी बन गया।

मुनि की भविष्यवाणी :

अब वह क्रूर स्वभावी कंस अपने ढंग से राज्य संचालन करने लगा था किन्तु वह अपने गुरु वसुदेव के उपकार को भूला नहीं था। अतः एक दिन वह वसुदेव को आग्रहपूर्वक मथुरा ले आया। उसने वसुदेव को गुरु दक्षिणा स्वरूप अपनी प्रिय बहन देवकी की शादी उनके साथ कर दी। वसुदेव भी समस्त कुटुम्बियों के अतिशय स्नेहवश अपनी धर्मपत्नी देवकी के साथ अभी मथुरा में ही रह रहे थे कि एक दिन-

कंस के बड़े भाई जो अतिमुक्तक नाम के मुनिराज बन गए थे वे

आहार के लिए राजमहल आ गए। तब कंस की पत्नी जीवद्यशा ने उन्हें नमस्कार किया और हँसती हुई क्रीड़ा भाव से कोई वस्त्र दिखाकर कहने लगी कि हे देवर! यह आपकी बहन देवकी का आनंद वस्त्र है, इसे देखिए।

संसार से विरक्त मुनिराज अपने अवधिज्ञान से भविष्य जानकर मौन को तोड़कर बोले–अहो! तू इस प्रकार क्यों आनंदित हो रही है। बेटी! यह निश्चित समझ कि इस देवकी के गर्भ से जो पुत्र होगा वह तेरे पति और पिता को मारने वाला होगा। यह ऐसी ही होनहार है–इसे कोई टाल नहीं सकता।

मुनि के वचन सुनकर जीवद्यशा काँप उठी, उसके नेत्रों से आँसू बहने लगे। वह उसी समय मुनिराज को छोड़कर पति के पास गई और सारा समाचार सुनाकर बोली—हे आर्य! "दिगम्बर मुनि के वचन सत्य ही निकलते हैं" इसका कुछ उपाय सोचिये।

कंस ने तुरंत ही कुछ चिन्तन किया और वसुदेव के पास पहुँच गया तथा उसके चरणों में नम्रीभूत होकर पूर्व की धरोहर रूप में जो वर था माँगने लगा। वसुदेव का हृदय बिल्कुल निश्छल था अतः उन्होंने कंस से इच्छित वर माँगने को कहा। तब कंस ने कहा—

"प्रत्येक प्रसूति के समय बहन देवकी का निवास मेरे घर में ही हो।" वसुदेव ने हाँ कर दी। भाई के घर बहन को कोई आपत्ति आ सकती है यह शंका भी कभी वसुदेव को नहीं हो सकती थी।

जैन पुराण यही बतलाते हैं कि वसुदेव और देवकी कारागृह में नहीं कंस के घर में रहते थे। पीछे जब वसुदेव को इस बात का ज्ञान हुआ तो उन्हें बहुत दुःख हुआ, वे सोचने लगे कि यह कैसा विधि का विधान है ?

वसुदेव कुमार देवकी के साथ आम्रवन के मध्य विराजमान चारण

ऋद्धिधारी अतिमुक्तक मुनिराज के पास गये और उन्हें नमस्कार कर समीप में बैठ गये। अनंतर उन्होंने मुनिराज से इस संदर्भ में प्रश्न किया–

गुरुदेव! मेरा पुत्र इस पापी कंस का घात करने वाला कैसे होगा ? यह मैं जानना चाहता हूँ सो कृपा कर कहिए, तथ मेरे कितने पुत्र होंगे ? वे कैसे जीवित रहेंगे ? इत्यादि।

मुनिराज ने कुछ भव–भवान्तर बताये जिनका हरिवंशपुराण में विस्तृत वर्णन है। अंत में उन्होंने बताया कि—

देवकी का सातवाँ पुत्र शंक, चक्र, गदा तथा खड्ग आदि उत्तम चिन्हों को धारण करने वाला होगा और वह कंस आदि शत्रुओं को मारकर समस्त पृथ्वी का पालन करेगा। शेष छहों पुत्र चरमशरीरी होंगे। उनकी अपमृत्यु नहीं होगी, अतः हे वसुदेव! तुम चिन्ता का त्याग करो। तुम्हारे छह पुत्र तो तीन बार में युगलियाँ रूप में जन्म लेंगे और वे अत्यंत पराक्रमी होंगे। इन्द्र का आज्ञाकारी हारी (नैगम) नामक देव उन पुत्रों के उत्पन्न होते ही अलका नाम की सेठानी के पास पहुँचा देगा, वहीं वे यौवन को प्राप्त करेंगे। उन पुत्रों में बड़ा पुत्र नृपदत्त, दूसरा देवपाल, तीसरा अनीकदत्त, चौथा अनीकपाल, पाँचवाँ शत्रुघ्न और छठा जितशत्रु नाम से प्रसिद्ध होगा। तुम्हारे ये सभी पुत्र समान रूप के धारक होंगे। ये सभी कुमार हरिवंश के चंद्रमा, तीन जगत् के गुरु तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान की शिष्यता को प्राप्त कर मोक्ष जावेंगे।

हे देवकी! तुम्हारे गर्भ से जो सातवाँ पुत्र होगा वह अत्यंत वीर होगा तथा इस भरत क्षेत्र में नौवाँ नारायण होगा। वसुदेव और देवकी मुनिराज के मुखारबिन्द से सारा वृत्तान्त सुनकर हर्षित हुए और भाग्य पर विश्वास करके जीवन के भावी क्षणों का इंतजार करने लगे।

देवकी के पुत्रों का जन्म :

देवकी और वसुदेव अब कंस के यहाँ तो रहने ही लगे थे, जब देवकी के गर्भ से प्रथम बार युगल पुत्रों ने जन्म लिया तुरंत नैगम देव उन दोनों पुत्रों को उठाकर सुभद्रिल नगर के सेठ सुदृष्टि की स्त्री अलका के यहाँ पहुँचा आया तथा उसी समय अलका सेठानी के भी युगलिया पुत्र हुए थे जो कि दुर्भाग्यवश उत्पन्न होते ही मर गये थे, उन दोनों मृत पुत्रों को लाकर देवकी के प्रसूतिगृह में रख आया।

देवों के द्वारा किया जाने वाला कार्य बस मिनटों में हो गया, किसी को पता भी न लगा। ज्यों ही कंस को ज्ञात हुआ कि देवकी ने दो पुत्रों को जन्म दिया है वह निर्दयतापूर्वक प्रसूतिगृह से मृतक पुत्रों को ही घसीट लाया और उन्हें शिला तल पर पछाड़ दिया। इसके पश्चात् देवकी ने दो बार दो-दो पुत्रों को और जन्म दिया वे भी अलका सेठानी के पास पहुँचाये गए और अलका के मृतक पुत्रों को यहाँ लाया गया जिन्हें कंस ने पछाड़ कर मार दिया। यह तो सब पूर्व जन्म के पुण्य की बात है जिनकी देवता आकर रक्षा करते हैं। कंस अपने बचाव का उपाय कर रहा था लेकिन भला विधि का विधान कौन टाल सकता है ? बस एक दिन जब उसका असली शत्रु पृथ्वी तल पर आने ही वाला था।

श्रीकृष्ण का जन्म :

देवकी अपने शयनकक्ष में सुखनिद्रा में मग्न थी तभी रात्रि के अन्तिम प्रहर में उसने सात स्वप्न देखे।

पहले स्वप्न में उसने अंधकार को नष्ट करने वाला उगता हुआ सूर्य देखा, दूसरे स्वप्न में पूर्ण चंद्रमा, तीसरे में लक्ष्मी, चौथे में आकाश

से नीचे उतरता हुआ विमान, पाँचवे स्वप्न में बड़ी-बड़ी ज्वाला वाली अग्नि देखी तथा छठे स्वप्न में ऊँचे आकाश में रत्नों की किरणों से युक्त देवों की ध्वजा देखी और सांतवें स्वप्न में अपने मुख में प्रवेश करता हुआ एक सिंह देखा, तभी देवकी विस्मयपूर्वक उठ बैठी।

नित्य क्रियाओं से निवृत्त हो उसने पतिदेव से अपने स्वप्न बतलाए। वसुदेव ने समझ लिया कि अब देवकी के गर्भ में श्रीकृष्ण नारायण का अवतार हो चुका है, देवकी भी स्वप्नों का फल जानकर अतिशय प्रसन्न हुई।

इधर कंस देवकी के सातवें पुत्र की ही प्रतीक्षा कर रहा था अतः बहन के गर्भ की रक्षा करता हुआ पूरी निगरानी रखता था। किन्तु वह पुत्र तो अजेय था अतः उसने तो समय से पूर्व सातवें मास में ही जन्म ले लिया। उसके जन्म लेते ही सारे प्रसूतिगृह में प्रकाश भर गया। उस समय सात दिनों से घनघोर वर्षा हो रही थी फिर भी उत्पन्न होते ही बालक को रोहिणी पुत्र बलराम ने उठा लिया और पिता वसुदेव ने ऊपर छाता तान दिया एवं रात्रि के समय ही दोनों शीघ्र ही घर से बाहर निकल पड़े। उस समय समस्त नगरवासी सो रहे थे तथा कंस के सुभट भी गहरी नींद में निमग्न थे इसलिए कोई भी उन्हें देख नहीं सका।

गोपुरद्वार पर आए तो किवाड़ बन्द थे परन्तु श्रीकृष्ण के चरणयुगल का स्पर्श होते ही उनमें निकलने योग्य सन्धि हो गई जिससे सब बाहर निकल आये।

यमुना नदी के किनारे पहुँचते ही श्रीकृष्ण के प्रभाव से उसका प्रबल प्रवाह एकदम शांत हो गया और नदी ने दो भागों में विभक्त होकर रास्ता दे दिया जिससे वे लोग शीघ्र ही वृन्दावन पहुँच गए। वहाँ गांव के बाहर इनका अति विश्वस्त नंदगोप अपनी यशोदा स्त्री के साथ रहता था।

नंदगोप के घर पहुँचकर दोनों ने उस पुत्र को नंद के हाथों में सौंपकर सारा वृतान्त बताते हुए कहा कि आप इसे अपना पुत्र समझकर पालन-पोषण करें और यह रहस्य किसी के सामने प्रकट न हो सके इस बात का ध्यान रखें।

यहाँ भी देखो, उसी समय यशोदा ने एक पुत्री को जन्म दिया था, उसे लेकर बलराम और वसुदेव शीघ्र ही वापिस आ गए।

प्रातःकाल ज्ञात हुआ कि देवकी ने कन्या को जन्म दिया है तब उस कंस का क्रोध कुछ कम हो गया था। किन्तु दीर्घदर्शी होने के कारण उसने विचार किया कि कदाचित् इसका पति मेरा शत्रु हो सकता है इस शंका से आकुलित होकर उसने कन्या को उठाकर उसे मसलकर नाक चपटी कर दी।

इस प्रकार कंस ने जब जान लिया कि देवकी के अब संतान होना बंद हो गया है तब वह संतुष्ट होकर राज्यकाज में निमग्न हो गया। इधर नंद के आँगन में श्रीकृष्ण की मनोहर बाल लीलाओं से मानो स्वर्ग ही धरती पर उतर आया था। कृष्ण-कन्हैया ज्यों-ज्यों बड़े हो रहे थे उनके शरीर में शंख, चक्र आदि चिन्ह स्पष्ट होते जा रहे थे।

श्रीकष्ण को मरवाने का प्रयास :

इधर किसी दिन कंस के एक हितैषी निमित्तज्ञानी ने उससे कहा कि हे राजन्! यहाँ कहीं किसी नगर अथवा वन में तुम्हारा शत्रु बढ़ रहा है उसकी खोज करनी चाहिए। तभी कंस ने अपने पूर्वभव में सिद्ध की गई देवियों का स्मरण किया, तत्क्षण ही वे प्रगट हो गईं और कंस से कहने लगीं-आज्ञा दीजिए। कंस ने कहा कि हमारा कोई बैरी गुप्तरूप से कहीं बढ़ रहा है सो तुम लोग शीघ्र ही उसका पता लगाकर उसे मार डालो।

कंस की बात को स्वीकृत कर वे देवियाँ जाकर शत्रु की खोज करने लगीं। उन्हें शीघ्र ही कृष्ण के बारे में ज्ञात हो गया और वे आकर अपना-अपना काम करने में लग गईं। उनमें से एक देवी भयंकर पक्षी का रूप बनाकर बालक कृष्ण के ऊपर चोंच से प्रहार करने लगी तो कृष्ण ने उसकी चोंच इतनी जोर से दबाई कि वह डरकर भाग गई। दूसरी देवी पूतना राक्षसनी बनकर अपने विषयुक्त स्तन उन्हें पिलाने लगी। परन्तु कृष्ण ने इसका स्तन इनती जोर से चूसा कि बेचारी चिल्लाने लगी और शीघ्र पलायित हो गई।

आखिर तो श्रीकृष्ण नारायण थे। ये सब पिशाचनी उन्हें कैसे मार सकती थीं ?

जब यशोदा माता ने अपने कन्हैया के पास अधिक उपद्रव देखा तो उन्होंने एक दिन कृष्ण का पैर कसकर खम्भे से बाँध दिया उस समय दो देवियाँ जमल और अर्जुन वृक्ष का रूप रखकर उन्हें पीड़ा पहुँचाने लगीं परन्तु कृष्ण ने उस दशा में भी दोनों देवियों को मार भगाया। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने बाल्यकाल में ही बड़े-बड़े शत्रुओं को जीतकर अपना पराक्रम दिखाया था।

गोवर्धन पर्वत का उठाना :

एक बार कंस के द्वारा भेजी गई एक देवी ने पाषाणमयी तीव्र वर्षा से कृष्ण को मारना चाहा परन्तु वे उस वर्षा से रचंमात्र भी घबराये नहीं प्रत्युत व्याकुल हुए गोकुल की रक्षा करने के लिए उन्होंने अपनी दोनों भुजाओं से गोवर्धन पर्वत को बहुत ऊँचा उठा लिया और उसके नीचे सबकी रक्षा की।

माता देवकी का ब्रज आगमन :

कृष्ण की इन लोकोत्तर चेष्टाओं का जब बलभद्र को पता चला तब उन्होंने माता देवकी के सामने इसका वर्णन किया। देवकी माता उपवास के बहाने पुत्र को देखने के लिए बलभद्र के साथ ब्रज में आईं। यह समाचार जानते ही नंदगोप ने पत्नी यशोदा के साथ आगे आकर अपनी स्वामिनी को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। पुनः पुत्र कृष्ण को लाकर माता के चरणों में प्रणाम कराया। उस बालक के वस्त्र पीले थे सिर पर मोर पंख की कलगी लगी हुई थी और कंठी, कर्णाभरण, कड़े मुकुट आदि अलंकारों से सुन्दर दिख रहा था।

माता देवकी उस पुत्र का स्पर्श करते हुए एकटक उसे देखती रही पुनः बोली–

"हे यशस्विनि यशोदे! ऐसे पुत्र को पाकर उसका लाड़-प्यार करते हुए तेरा वन में रहना ही प्रशंसनीय है किन्तु पृथ्वी का राज्य पाकर भी पुत्र के बिना भला क्या सुख है?......"

तब यशोदा ने कहा—हे स्वामिनी! आपका कहना सर्वथा सत्य है। मेरे मन को अत्यधिक आनंदित करने वाला यह आपका दास आपके प्रिय आशीर्वाद से चिंरजीव रहे यही प्रार्थना है। इसी बीच पुत्र के स्नेह से देवकी के स्तनों से दूध झरने लगा। तब कुशलबुद्धि बलदेव ने 'कहीं भेद न खुल जाय' इस भय से दूध के भरे हुए घड़े को लेकर माता के ऊपर उड़ेल कर अभिषेक कर दिया। अनंतर माता के साथ अपनी मथुरा नगरी को वापस आ गये।

गोपियों के साथ क्रीड़ा :

इधर श्रीकृष्ण बढ़ते-बढ़ते किशोर अवस्था में आ गये। बलदेव

प्रतिदिन वहाँ आकर उन्हें अनेक कला और शिक्षा दिया करते थे। यहाँ ग्वाल कन्यायें कृष्ण के साथ खेला करती थीं।

कुछ युवावस्था को प्राप्त श्रीकृष्ण उन गोपकन्याओं को उत्तम रासों द्वारा क्रीड़ा कराया करते थे। उन गोप युवतियों के हाथ की अँगुलियों से स्पर्श करते हुए वे पूर्णतया निर्विकार रहते थे सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषों में परस्त्रियों के प्रति विकार भाव नहीं आता है।[१]

कंस की आशंका :

कृष्ण की अलौकिक चेष्टायें सुनकर एब बार कंस स्वयं उसे खोजने के लिए गोकुल में आया, किन्तु माता ने किसी युक्ति से उसे ब्रज को भेज दिया तब कंस वापस मथुरा लौट आया।

उसी समय कंस के यहाँ सिंहवाहिनी नागशय्या, अजितंजय नाम का धनुष और पांचजन्य नाम का शंख ये तीन अद्भुत वस्तुयें प्रगट हुईं। कंस के ज्योतिषी ने बताया कि "जो कोई नागशय्या पर चढ़कर धनुष की डोरी चढ़ा दे और पांचजन्य शंख को फूँक दे वही तुम्हारा शुत्र है।" अतः ज्योतिषी के कहे अनुसार कंस राजा ने नगर में घोषणा करा दी कि—

"जो पुरुष यहाँ आकर नागशय्या पर चढ़कर धनुष को चढ़ाकर शंख फूँकेगा वह पराक्रमी पुरुष राजा द्वारा अलभ्य लाभ को प्राप्त करेगा।"

कंस की घोषणा सुनकर अनेक राजा वहाँ आये किन्तु सभी लज्जित हो वासप चले गये। इधर कंस की पत्नी जीवद्यशा का भाई भानु उधर गोकुल आया हुआ था। वहाँ कृष्ण के अद्भुत पराक्रम को सुनकर उन्हें अपने साथ मथुरा ले आया।

---

१. हरिवंशपुराण सर्ग ३५।

नागशय्या पर चढ़ना :

इधर श्रीकृष्ण उस नागशय्या के स्थान पर पहुँचे और सहज ही उस पर चढ़कर धनुष को चढ़ाया पुनः पांचजन्य शंख फूँक दिया।

इस महान् आश्चर्य को करते हुए देखकर लोगों ने जोरों से शब्द किया कि "अहो! यह कोई पराक्रमी पुरुष है।" उसी क्षण बलदेव ने कृष्ण को बहुत लोगों के साथ ब्रज भेज दिया। पुनः यह महाकार्य किसने किया है? इसका पता ही नहीं लग पाया।

यद्यपि कंस ने समझ लिया था कि मेरा शत्रु उत्पन्न हो चुका है और बढ़ रहा है फिर भी वह उसके मारने में अनेक उपाय सोचा ही करता था।

कालिया नाग का मर्दन :

कंस ने गोकुल के गोपों के लिए यमुना के एक ह्रद—सरोवर से कमल लाने के लिए कहलाया। तब सब गोप व्याकुल हो उठे क्योंकि ह्रद में प्रवेश करना अत्यंत दुर्गम था वहाँ पर विषम सांप लहलहा रहे थे। श्रीकृष्ण अनायास ही उस ह्रद में घुस गये तब वहाँ एक महाभयंकर नाग, जिसकी फण पर मणियाँ शोभायमान हो रही थीं वह कुपित होकर कृष्ण के सामने आया। अग्नि के तिलगों को उगलते हुए उस काले-काले 'कालिया' नाम के नाग से श्रीकृष्ण क्रीड़ा करने लगे। कुछ ही देर में उसे मर्दन कर डाला तथा भुजाओं से उसे ताड़ित कर मार डाला।

अनंतर बड़े-बड़े कमल तोड़ने लगे। तभी तट के किनारे वृक्षों पर चढ़े हुए गोप बालक जय-जयकार करने लगे। देदीप्यमान पीले वस्त्रों

को धारण किए हुए श्रीकृष्ण जैसे ही सरोवर से बाहर निकले कि बलभद्र ने दोनों भुजाओं से उनका गाढ़ आलिंगन कर छाती से चिपका लिया। पीताम्बर धारी नीलकमल के समान श्याम सलोने श्रीकृष्ण और पीताम्बर धारी गौरवर्ण वाले बलभद्र का वह प्रेम से मिलन बड़ा ही सुन्दर दिख रहा था। उस कमलों को देकर बलदेव ने गोपों को कंस के दरबार में मथुरा नगरी भेज दिया।

मल्लयुद्ध :

कंस ने जब कालिया नाग का मर्दन सुना और खिले हुए कमल सामने रखे हुए देखे तब वह दूसरों के गुणों को नहीं सहन करने वाला उग्रस्वभावी कंस दीर्घ उच्छ्वास भरने लगा। अनंतर शीघ्र ही उसने यह आज्ञा दी कि—

"नंदगोप के पुत्र आदि को लेकर समस्त गोप यहाँ मल्लयुद्ध के लिए अविलंब तैयार हो जावें।"

ऐसी घोषणा करके कंस ने अनेक बड़े-बड़े मल्लों को बुलवा लिया।

स्थिर बुद्धि के धारक वसुदेव ने अपने पुत्रों के साथ सलाह करके शौर्यपुर से अपने समुद्रविजय आदि नौ भाईयों को मथुरा आने के लिए खबर भेज दी। समाचार पाते ही ये समुद्रविजय आदि सभी भाई अपनी विशाल सेना के साथ यहाँ आ गये। तब वसुदेव ने कहा ये भाई बहुत दिन बाद मेरे से मिलने आ रहे हैं अतः कंस ने भी उनका अच्छा सम्मान किया।

इधर मल्लयुद्ध में आने के पहले बलदेव श्रीकृष्ण को साथ लाने के लिए गोकुल गये हुए थे। वहाँ विलंब करती हुई यशोदा से कहा—

"जल्दी स्नान कर, क्यों इस तरह देर कर रही है?" इसके पहले कभी बलभद्र ने यशोदा से ऐसे कड़े शब्द नहीं कहे थे अतः उनकी आँखों से आँसू निकल आये। श्रीकृष्ण को यह सब सहन नहीं हुआ तब वे उदासचित्त हो गये। इधर यशोदा जल्दी से स्नान कर भोजन बनाने लगी। उधर ये दोनों स्नान करने के लिए नदी पर चले गये।

एकांत में बलदेव ने श्रीकृष्ण से पूछा–"आज तुम्हारा मुख म्लान क्यों हो गया है ? तुम्हारे मन में कुछ संताप दिख रहा है। हे भाई ! शीघ्र ही कहो क्या बात है ? तब कृष्ण ने कहा —

"हे आर्य ! आप विद्वानों में श्रेष्ठ विद्वान हैं। हे पूज्य ! आप सबको उपदेश देते हैं पुनः आज आपने मेरी माता यशोदा को कठोर शब्दों से क्यों दुःखी किया ?......."

इस वचनों को सुनते ही बलदेव ने अपनी दोनों भुजाओं से श्रीकृष्ण का गाढ़ आलिंगन कर लिया। हर्ष से उनका शरीर रोमांचित हो गया। उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह चली जो मानों उनके हृदय की स्वच्छता को ही सूचित कर रही थी। उन्होंने बड़े प्रेम से कहा —

"हे भाई ! सुनो, किसी समय अहंकार के वशीभूत हो अर्धचक्री राजा जरासंध की पुत्री और कंस की पत्नी जीवद्यशा के समक्ष अतिमुक्तक मुनि ने कहा था कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए पुत्रों में से एक पुत्र तेरे पति और पिता का वध करेगा। अतः क्रूर हृदयी कंस ने देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए छह पुत्रों को अपनी जान में तो मार ही डाला है। फिर तुम प्रसव के समय से पहले ही उत्पन्न हो गये। तब तुम्हें पिता ने और मैंने गोकुल में लाकर यशोदा के यहाँ रखा था। बाल्यकाल से लेकर आज तक वह कंस तुम्हें मारने के नाना उपाय

कर चुका है और आज भी यह मल्ल युद्ध मात्र तुम्हारे मारने के लिए ही रचा गया है।"

इस प्रकार आज पहली बार श्रीकृष्ण ने सुना कि–"मैं हरिवंश में जन्मा हूँ, मेरे पिता वसुदेव और माता देवकी हैं, ये प्यारे भाई बलदेव है।" इत्यादि सुनते ही हर्षातिरेक से उनका मुख कमल प्रफुल्लित हो उठा। तब जन्मजात हितबुद्धि से उन दोनों भाइयों के हृदय परस्पर में विशेष ही मिल गये।

तत्पश्चात् दोनों भाई नदी में स्नान कर गोपों के साथ घर आ गये। माता यशोदा के हाथ से परोसा हुआ भोजन किया पुनः वस्त्राभरणों से अलंकृत हो अपने मन में कंस के मारने का दृढ़ निश्चय कर वहाँ से निकले।

मथुरा के पास पहुँचते ही कंस के द्वारा भेजे गये कुछ असुर दुष्ट नाग, घोड़े, गधे आदि सामने आये किन्तु कृष्ण ने सभी को मार भगाया। नगर में प्रवेश करते हुए शत्रु की आज्ञा से उन दोनों पर दो बड़े-बड़े हाथी छोड़ दिये गये। जिन्हें इन दोनों ने लीलामात्र में पकड़ करके मार डाला।

अखाड़े की भूमि में प्रवेश :

वहाँ मथुरा पहुँचकर ये दोनों मल्लयुद्ध की भूमि में प्रविष्ट हुये। बलदेव ने इशारे से श्रीकृष्ण को अपने पूरे परिवार का—राजा समुद्रविजय आदि ताऊ, वसुदेव पिता का परिचय करा दिया। साथ ही दुष्ट कंस को भी दिखा दिया।

मल्लयुद्ध प्रारंभ हुआ। कंस की आज्ञा से प्रसिद्ध चाणूरमल्ल श्रीकृष्ण के सामने आया। उसके साथ कुश्ती करते हुए, जो शरीर में

श्रीकृष्ण से दूना था उसे अपने वक्षस्थल से लगाकर श्रीकृष्ण ने अपनी भुजाओं से इतनी जोर से दबाया कि उसके शरीर से रुधिर की धारा बह चली और वह उसी क्षण निष्प्राण हो गया। उधर बलभद्र ने मुष्टिक नामक मल्ल को पछाड़ कर प्राण रहित कर दिया।

इस अखाड़े में तो क्या उस समय आधे भरत क्षेत्र के तीनों खण्डों में इन दोनों भाइयों के समान कोई भी अधिक बलशाली नहीं था। इन श्रीकृष्ण और बलदेव में एक हजार सिंह और हाथियों का बल था।

कंस का वध :

दोनों प्रधान मल्लों की मृत्यु देखते ही अत्यधिक क्रुद्ध होकर कंस हाथ में पैनी तलवार लेकर आगे बढ़ा। उसके मैदान में बढ़ते ही अखाड़े में उपस्थित जनसमूह का जोरदार कोलाहल हो गया। किन्तु बिना घबराये ही श्रीकृष्ण ने सामने आते हुए शत्रु के हाथ से तलवार छीन ली और मजबूती से उसके बाल पकड़कर उसे क्रोधवश पृथ्वी पर पटक दिया। पुनः उसके पैरों को खींचकर उसे पत्थर पर पछाड़ कर मार डाला और हँसकर बोले — "इसके योग्य यही दण्ड उचित था।"

कंस का वध देखकर उसकी सेना क्षुभित हो आगे बढ़ती देखकर बलदेव ने क्रोध से मंच का एक खंभा उखाड़ कर गर्व से सब ओर प्रहार करते हुए इस सारी सेना को क्षण भर में खदेड़ दिया। इधर कंस के पक्ष में नियुक्त जरासंध की सेना भी यद्यपि क्षुभित हुई थी फिर भी यादव राजाओं को एक साथ उठकर खड़े हुए देखकर वह समस्त सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई।

श्रीकृष्ण का माता-पिता से मिलन :

अनंतर श्रीकृष्ण बड़े भाई के साथ रथ पर सवार हो अपने पिता वसुदेव के घर गये। समुद्रविजय आदि राजाओं को नमस्कार कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। चिरकाल के वियोग से संतप्त माता देवकी और पिता वसुदेव के चरणों में प्रणाम किया। माता-पिता ने उस समय पुत्र श्रीकृष्ण को छाती से लगाकर जो सुख प्राप्त किया था वह अनिर्वचनीय था। पुनः बहन ने (यशोदा की पुत्री ने) भाई को प्राप्त कर परम हर्ष का अनुभव किया। सभी परिवार के लोगों ने प्रथम बार श्रीकृष्ण का मुख देखा था अतः उस समय जो आनंद का अनुभव हुआ था वह शब्दों के अगोचर था।

उग्रसेन की बंधन मुक्ति :

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण मुख्य फाटक पर बंदी किये गये राजा उग्रसेन के पास पहुँचे उनकी बेड़ियाँ काटकर उन्हें बंधन मुक्त कर दिया। उस समय चारों ओर से मथुरा में श्रीकृष्ण के जय-जयकारों की ध्वनि से सारा आकाशमण्डल मुखरित हो उठा था।

इसके बाद यादवों की आज्ञा से श्रीकृष्ण ने उग्रसेन को पुनः मथुरा का राजा बना दिया और सभी यादव राजा सुखपूर्वक रहने लगे। श्रीकृष्ण भी अपने माता-पिता के मन को संतुष्ट करते हुए वहीं रहने लगे।

रानियों का लाभ :

विद्याधरों के राजा सुकेतु ने श्रीकृष्ण की प्रशंसा सुनकर उन्हें भावी नारायण निश्चित कर उनके लिए अपनी पुत्री सत्यभामा दे दी। अन्य अनेक राजाओं ने भी अपनी-अपनी पुत्रियों का विवाह श्रीकृष्ण के साथ करके अपनी कन्याओं के भाग्य के साथ-साथ अपने भाग्य को भी सराहा।

जरासंध का कोप :

कंस के मरने के बाद पति के वियोग से विह्वल हुई पुत्री जीवद्यशा अपने पिता प्रतिनारायण महाराजा जरासंध के पास पहुँची और बिलख-बिलख कर रोने लगी। पुत्री के शोक से दु:खी हुआ जरासंध ने कुपित होकर अपने पुत्र कालयवन को युद्ध के लिए भेज दिया। यह विशाल सेना के साथ आकर यादवों के साथ सत्रह बार युद्ध करके अंत में मृत्यु को प्राप्त हो गया। तब राजा जरासंध ने अपने भाई अपराजित को भेजा। इसने भी वीर यादवों के साथ तीन सौ छियालीस बार युद्ध किया और अंत में श्रीकृष्ण के बाणों से मारा गया।

श्रीकृष्ण का वैभव :

श्रीकृष्ण की एक हजार वर्ष की आयु थी, दश धनुष की ऊँचाई थी, नील कमल के समान उनके शरीर का सुन्दर वर्ण था। चक्ररत्न, शक्ति, गदा, शंख, धनुष, दण्ड और नन्दक नाम का खड्ग उनके ये सात रत्न थे, इन सभी रत्नों की देवगण रक्षा करते थे, रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, सुसीमा, लक्ष्मणा, गांधारी, गौरी और पद्मावती ये आठ पट्टरानियाँ थीं तथा सोलह हजार रानियाँ थीं।

बलदेव के रत्नमाला, गदा, हल और मूसल ये चार रत्न थे तथा इनके आठ हजार रानियाँ थीं।

इस यदुवंश के परिवार में सब मिलाकर महाप्रतापी तथा कामदेव के समान सुन्दर ऐसे साढ़े तीन करोड़ कुमार[१] क्रीड़ा के प्रेमी हो निरंतर प्रजा के मन को अनुरंजित किया करते थे।

---

१. हरिवंशपुराण सर्ग ४८।

भगवान् नेमिनाथ (३)

किसी समय शौर्यपुर में राज्य करते हुए राजा समुद्रविजय के राजमहल में रानी शिवादेवी के आँगन में सौधर्म इंद्र की आज्ञा से कुबेर ने रत्नों की वर्षा करना शुरू कर दिया। प्रतिदिन साढ़े बारह करोड़ रत्न बरसते थे। महाराज समुद्रविजय इन रत्नों को याचकों को बाँट देते थें।

श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नाम की षट् कुमारिकाओं ने माता की सेवा करना प्रारंभ कर दिया। छह महीने बाद माता शिवादेवी ने ऐरावत हाथी आदि सोलह स्वप्न देखे। प्रात: पति से उनका फल विदित किया कि "तीन लोक के स्वामी तीर्थंकर शिशु तुम्हारे गर्भ में आ गया है।" ऐसा सुनकर रानी शिवादेवी बहुत ही प्रसन्न हुईं। यह तिथि कार्तिक शुक्ला षष्ठी थी।

नव महीने व्यतीत हो जाने के बाद श्रावण सुदी छठ के दिन माता ने पुत्र रत्न को जन्म दिया। उस समय तीर्थंकर शिशु के पुण्य प्रभाव से चारों प्रकार के देवों के यहाँ बिना बजाये शंख, घंटा, भेरी, सिंहनाद आदि बाजे बजने लगे। इंद्रों के आसन काँपने लगे, उनके मुकुट झुक गये और कल्पवृक्षों से पुष्प बरसने लगे।

अवधिज्ञान के द्वारा जिनेन्द्र भगवान के जन्म को जानकर सौधर्म इंद्र महावैभव से असंख्यातों देव-देवियों सहित शौर्यपुर आया, तब इंद्राणी ने प्रसूतिगृह में जाकर जिन बालक को उठा लिया और बाहर लाकर इंद्र को दे दिया। इंद्रराज जिन बालक को लेकर महामहोत्सव सहित ऐरावत हाथी पर बैठकर सुदर्शनमेरु के ऊपर जा पहुँचे। वहाँ पर पांडुकशिला पर जिन बालक को विराजमान करके क्षीरसागर से भरकर

लाये हुये ऐसे १००८ स्वर्ण कलशों से जिन प्रभु का जन्माभिषेक किया। इंद्राणी ने बालक को वस्त्राभरणों से अलंकृत किया। इंद्र ने बालक का 'नेमिनाथ' नामकरण किया। अनंतर महावैभव से लाकर माता-पिता को देकर आनंद से तांडवनृत्य आदि करके अनेक देवों को जिन बालक के साथ क्रीड़ा करने के लिए नियुक्त कर इंद्रराज अपने स्थान पर चले गये।

इधर बालक नेमिनाथ क्रम-क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हुए युवावस्था में आ गये।

द्वारिकापुरी (४)

द्वारिका नगरी की रचना :

इधर जमाई और भाई आदि के वध से जरासंघ ने समस्त यादवों को नष्ट करने का मन में पक्का विचार कर लिया था तब उसने अपरिमित सेना को साथ लेकर यादवों की ओर प्रयाण कर दिया। उस समय गुप्तचरों द्वारा यादवों को इस बात का पता चल गया। राजा समुद्रविजय आदि आपस में विचार करने लगे-

तीनों खण्डों में इस जरासंध की आज्ञा अन्य किसी के द्वारा खंडित नहीं हुई है। यह अत्यंत उग्र है और इसका शासन भी उग्र है। यह चक्र-रत्न का स्वामी है। प्रतिनारायण अर्धचक्री है। इसने हम लोगों का भी कभी अपकार नहीं किया है किन्तु अब जमाई कंस और भाई अपराजित आदि के वध से कुपित होकर चढ़ाई करने आ रहा है। यह इतना अहंकारी है कि हम लोगों के दैव और पुरुषार्थ संबंधी सामर्थ्य को देखते हुए भी नहीं देख रहा है। कृष्ण का पुण्य और बलराम का पौरुष बाल्यकाल

से ही प्रकट दिख रहा है।

इंद्रों के आसन को कंपित कर देने वाले नेमिनाथ तीर्थंकर यद्यपि इस समय बालक है फिर भी उनका प्रभुत्व तीनों जगत् में प्रकट हो रहा है। अहो! सौधर्मइंद्र इनका किंकर है समस्त लोकपाल इनकी रक्षा में व्यग्र हैं। भला तीर्थंकर के कुल का कौन अपकार कर सकता है? यह राजा जरासंध प्रतिनारायण है और इसके मारने वाले ये नौवें बलभद्र बलदेव तथा नौवें नारायण कृष्ण ही हैं। यह निश्चित है फिर भी अभी हम लोग कुछ दिन और शांति धारण करें इस समय हम लोग पश्चिम दिशा का आश्रय लेकर चुपचाप बैठें, क्योंकि ऐसा करने से कार्य की सिद्धि निःसंदेह होगी।

इस प्रकार परस्पर में मंत्रणा कर इन लोगों ने अपने कटक में यह सूचना कर दी। तभी मथुरा, शौर्यपुर, वीर्यपुर के राजा, प्रजा, सामंत आदि सभी एक साथ प्रस्थान करके चल पड़े। उस समय अपरिमित धन से युक्त अठारह करोड़ यादव शौर्यपुर के बाहर निकले थे। वे क्रम से विंध्याचल के समीप पहुँचे थे।

"मार्ग में पीछे-पीछे जरासंध आ रहा है।" यह सुनकर अत्यधिक उत्साह से भरे हुए यादव युद्ध की इच्छा करते हुए उनकी प्रतीक्षा करने लगे।

उन दोनों सेनाओं में थोड़ा ही अंतर देखकर समय और भाग्य के नियोग से अर्धभरत क्षेत्र में निवास करने वाली देवियों ने अपने दिव्य सामर्थ्य से विक्रिया करके बहुत सी चितायें रच दीं और शत्रुओं को यह दिखा दिया कि यादव लोग अग्नि की ज्वाला में भस्म हो गये।

इधर रोती हुई बुढ़िया से जरासंध ने पूछा तब उसने यही समझाया कि जरासंध के प्रताप से व्याकुल होकर ये यादव गण अग्नि में भस्म हो

चुके हैं। उन राजाओं की वंश परंपरा से चली आई मैं दासी हूँ। ऐसा देवियों ने मायाजाल रचकर जरासंध को युद्ध से पराङ्मुख कर दिया।

इधर समुद्रविजय आदि दशों भाई, श्रीकृष्ण, तीर्थंकर नेमिकुमार आदि समुद्र के निकट पहुँचकर उसकी शोभा देखने लगे। इसके बाद एक दिन स्थान प्राप्त करने की इच्छा से श्रीकृष्ण ने बलदेव के साथ तीन उपवास ग्रहण कर डाभ की शय्या पर बैठकर मंत्र का ध्यान किया। तब सौधर्मइंद्र की आज्ञा से गौतम नामक शक्तिशाली देव ने आकर समुद्र को शीघ्र ही दूर हटा दिया। अनंतर श्रीकृष्ण के पुण्य और श्री नेमिनाथ की सातिशय भक्ति से कुबेर ने वहाँ आकर शीघ्र ही 'द्वारिका' नाम की उत्तमपुरी की रचना कर दी। यह नगरी बारह योजन (९६ मील) लम्बी और नौ योजन (७२ मील) चौड़ी थी, यह वज्रमय कोट तथा समुद्ररूपी परिखा से घिरी हुई थी।

इस नगरी में ऊँचे-ऊँचे जिनमंदिर शोभायमान हो रहे थे। नगरी में यथायोग्य स्थान पर समुद्रविजय आदि के महल बने हुए थे। उन महलों के बीच में अठारह खंडों से युक्त श्रीकृष्ण का सर्वतोभद्र नाम का महल सुशोभित हो रहा था। वापिका तथा बगीचा आदि से विभूषित बलदेव के महल के आगे सभामंडप था जो कि इंद्र के सभाभवन के समान ही था।

तभी कुबेर ने श्रीकृष्ण के लिए मुकुट, हार, कौस्तुभमणि, दो पीतवस्त्र, लोक में अत्यंत दुर्लभ नक्षत्रमाला आदि आभूषण, कुमुद्वती नाम की गदा, शक्ति, नंदक नाम का खड्क, शार्ङ्ग नाम का धनुष, दो तरकश, वज्रमय बाण, सब प्रकार के शस्त्रों से युक्त एवं गरुड़ की ध्वजा से सहित दिव्यरथ, चमर और श्वेत छत्र प्रदान किये। साथ ही बलदेव के लिए दो नील वस्त्र, माला, मुकुट, गदा, हल, मूसल, धनुष बाणों से

युक्त दो तरकश, दिव्य रथ, और छत्र आदि दिये। समुद्रविजय आदि राजाओं का भी कुबेर ने वस्त्राभरण आदि देकर खूब सम्मान किया। श्री नेमिनाथ तीर्थंकर की भी कुबेर ने उत्तमोत्तम वस्तुओं को भेंट कर पूजा की।

उस समय शुभ मुहूर्त में "आप सब लोग इस नगरी में प्रवेश करें।" ऐसा कहकर और पूर्णभद्र नामक यक्ष को संदेश देकर कुबेर क्षणभर में अंतर्हित हो गया। यादवों के समूह ने समुद्र के तट पर श्रीकृष्ण और बलदेव का अभिषेक कर हर्षित हो उनकी जय-जयकार करके चतुरंग सेना के साथ उस द्वारिकापुरी में बड़े वैभव से प्रवेश किया। कुबेर की आज्ञा से यक्षों ने इस नगरी के समस्त भवनों में साढ़े तीन दिन तक अटूट धन-धान्यादि की वर्षा की थी। वहाँ पर द्वारिकानाथ श्रीकृष्ण का अनेक राजाओं की हजारों कन्याओं के साथ विवाह सम्पन्न हुआ।

वहाँ प्रतिदिन समस्त यादव एवं बलभद्र और नारायण श्रीकृष्ण के आंनद को बढ़ाते हुए नेमिकुमार तीर्थंकर बाल्यकाल को व्यतीत कर यौवन अवस्था में आ गये थे।

रुक्मिणी का लाभ :

कुंडिनपुर के राजा भीष्म की पुत्री का नाम रुक्मिणी था और बड़े पुत्र का नाम रुक्मी था। एक बार नारद ऋषि वहाँ आये। अंतःपुर में पहुँचे तथा रुक्मिणी के द्वारा नमस्कार करने पर "द्वारिका के स्वामी तुम्हारे पति हों।" ऐसा आशीर्वाद दिया उस समय कन्या के द्वारा पूछे जाने पर नारद ने द्वारिका के वैभव का वर्णन करके श्रीकृष्ण के रूप गुणों की खूब प्रशंसा की। पुनः आकाश मार्ग से द्वारिका आकर नारद जी ने श्रीकृष्ण को भी रुक्मिणी में अनुरक्त कर दिया।

इधर रुक्मिणी की बुआ ने भी एक दिन रुक्मिणी को एकांत में ले जाकर कहा। हे बाले! तू मेरे वचन सुन– किसी समय अवधिज्ञानी अतिमुक्तक मुनि ने यहाँ पर तुझे देखकर यह कहा था कि यह लक्ष्मी के समान कन्या रुक्मिणी श्रीकृष्ण की पट्टरानी होगी। श्रीकृष्ण की सोलह हजार रानियों में यह प्रभुत्व को प्राप्त करेगी। परन्तु पुत्री! चिंता का विषय यह है कि तेरा भाई रुक्मी तुझे शिशुपाल राजकुमार को देने का निर्णय ले रहा है।

उस समय रुक्मिणी की बुआ ने पुत्री के परामर्श से किसी विश्वासपात्र पुरुष के हाथ से एक पत्र श्रीकृष्ण के पास द्वारिकापुरी भेज दिया। उसमें स्पष्ट लिख दिया कि "हे माधव! आप माघ शुक्ला अष्टमी के दिन आकर इसका हरण कर लें क्योंकि इसके पिता आदि बांधवगण इसे शिशुपाल राजकुमार को देना निश्चित कर चुके हैं और मुनि के वचनानुसार इस समय यह आपकी ही वल्लभा है आपको न पाकर यह प्राण त्याग कर देगी.....।"

इधर कन्यादान की तैयारी में राजा भीष्म के कहे अनुसार शिशुपाल कुंडिनपुर आ चुका था। उधर श्रीकृष्ण भी बलदेव के साथ ही गुप्त रूप से वहाँ उद्यान में पहुँच गये। रुक्मिणी भी अपनी बुआ के साथ वहाँ उद्यान में नागदेव की पूजा के बहाने पहुँच गई थी।

शिशुपाल का वध :

वहाँ पर श्रीकृष्ण से यथायोग्य परिचय और वार्तालाप के अनंतर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को अपने रथ पर बिठा लिया। पुनः श्रीकृष्ण ने भीष्म, रुक्मी और शिशुपाल को रुक्मिणी हरण का समाचार देकर

अपना रथ आगे बढ़ाया और जोरों से पांचजन्य शंख फूँक दिया।

समाचार पाते ही रुक्मी, शिशुपाल आदि युद्ध के लिए आ गये। तब रुक्मिणी के विशेष निवेदन से श्रीकृष्ण ने रुक्मी को नहीं मारना स्वीकार कर युद्ध शुरू कर दिया। उस युद्ध में श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का मस्तक अपने बाणों से अलग कर दिया।

इसके विषय में ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि शिशुपाल के जन्मकाल से ही तीन नेत्र थे। एक निमित्तज्ञानी ने बताया था कि जिसके देखने पर इसका तीसरा नेत्र विलीन हो जाये उसी के द्वारा इसका मरण होगा तब इसकी माता यह निर्णय लेते हुए इसे जब श्रीकृष्ण के सामने लाई कि इसका तीसरा नेत्र विलीन हो गया था। माता के द्वारा अतीव अनुनय विनय से पुत्र की भिक्षा की याचना करने पर श्रीकृष्ण ने कहा था, "मातः! मैं इसके सौ अपराध तक क्षमा कर दूँगा।"

अब इसके सौ अपराध पूर्ण हो चुके थे अतः श्रीकृष्ण ने उसे मार डाला था।

कौरव-पाण्डव मिलन (५)

पाण्डवों का अज्ञात भ्रमण :

इधर घूमते-घूमते ये पाण्डव लोग चंपापुरी में पहुँच गये। अनेकों चेष्टाओं से मनोविनोद करते हुए वहाँ घूम रहे थे कि अकस्मात् एक बलवान हाथी आलान स्तम्भ तोड़कर नगर को व्याकुल कर रहा था। तब भीम ने उस हाथी को वश में करके नगर का वातावरण शांत किया आगे बढ़कर कदाचित् ये लोग विंध्य पर्वत पर पहुँचे, वहाँ जिनमंदिर के किवाड़ बन्द थे, भीम ने खोल दिये और सबने बड़ी भक्ति से जिनेन्द्र

भगवान की पूजा की, अनंतर एक यक्षदेव ने आकर भीम को एक गदा प्रदान की और बहुत प्रशंसा-स्तुति की।

द्रौपदी का स्वयंवर विधान :

अनंतर ये लोग अनेको देशों का उल्लंघन करते हुए माकंदी नगरी में आ गये। वहाँ के राजा द्रुपद की भोगवती पत्नी से उत्पन्न हुई द्रौपदी नामक सुन्दर कन्या थी। निमित्तज्ञानी ने बताया था कि जो पुरुष गांडीव धनुष चढ़ायेगा वही इस कन्या का पति होगा। वहाँ यह सूचना थी कि जो मनुष्य गांडीव धनुष चढ़ाकर राधा के नाक में स्थित मोती को विद्ध करेगा वही इस कन्या का पति होगा। उस समय वहाँ पर दुर्योधन आदि बड़े-बड़े राजा लोग आये थे। सभी के हताश हो जाने पर युधिष्ठिर की आज्ञा से ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन ने गांडीव धनुष को चढ़ाकर राधा की नाक का मोती बेधकर द्रौपदी की वरमाला प्राप्त कर ली।

द्रौपदी का लोकापवाद :

जिस समय द्रौपदी ने अर्जुन के गले में वरमाला डाली उस समय हवा के वेग से माला के पुष्प टूट कर पाँचों पांडवों की गोद में जा गिरे। उस समय "द्रौपदी ने पाँच पुरुषों को वर लिया है", मूर्ख लोगों ने ऐसी घोषणा कर दी। आचार्य कहते हैं कि जो ऐसी सतियों पर दोषारोपण करते हैं वे महान पाप का बंध कर लेते हैं। इसका कारण भी यह है कि किसी समय एक आर्यिका नवदीक्षिता थी उसने पाँच जारपुरुषों के साथ वन में आई हुई बसंतसेना नामक सुन्दर वेश्या को देखा, उसे देखकर "मुझे भी ऐसा सुख प्राप्त होवे" ऐसा भाव कर लिया। पुनः शीघ्र ही वापस आर्यिकाओं के पास आकर गुर्वाणी के पास अपनी निन्दा करते

हुए प्रायश्चित लिया और घोर तपश्चरण किया। अनंतर आयु के अंत में समाधि से मरकर अच्युत स्वर्ग में देवी हुई। वहाँ से आकर द्रौपदी हुई। जरा सी दुर्भावना से उस समय जो कर्म बंध हो गया था उसके फलस्वरूप द्रौपदी को पाँच पति वाली होने का झूठा आरोप लगा है। वास्तव में युधिष्ठिर और भीम जेठ तथा नकुल एवं सहदेव देवर थे।

इधर दुर्योधन आदि भड़क कर युद्ध करने के लिए वहीं स्वयंवर मण्डप में सन्नद्ध हो गये। इस समय पाण्डव लोग ब्राह्मण के वेश में थे। भयंकर युद्ध शुरू हो गया। गुरु द्रोणाचार्य को अपने सामने युद्ध में तत्पर देख अर्जुन ने अपना परिचय लिखकर बाण में लगाकर गुरु के पास छोड़ा। द्रोणाचार्य ने पत्र पढ़ा उनके नेत्र अश्रुजल से भर गये। "पाण्डव लाक्षागृह में जल गये थे" ऐसी कल्पना के बाद पुनः उन पाण्डवों को जीवित प्राप्त कर कुटुम्बियों के हर्ष का पार नहीं रहा। द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कर्ण, कौरव सभी परस्पर में पाण्डवों से मिले। तब दुर्योधन ने कहा कि हे नृपगण! मैंने लाक्षागृह नहीं जलाया था मैं शपथपूर्वक कहता हूँ। इत्यादि रूप से अपनी दुष्टता को छिपाते हुए दुर्योधन आदि कौरव अर्जुन का विवाह कराकर सब मिलकर हस्तिनापुर आ गये और सुख से रहने लगे। मार्ग में जिन-जिन ने युधिष्ठिर आदि को कन्यायें दी थीं व देने का संकल्प किया था उन सभी कन्याओं को अपने यहाँ बुलाकर ये लोग कालयापन करने लगे।

उस समय युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली)में, भीम कुरुजाँगल देश के तिलपथ नामक बड़े नगर में, अर्जुन सुनपथ (सोनीपत) में, नकुल जलपथ (पानीपत) में और सहदेव वणिक्पथ (बागपत) नामक नगर में रहने लगे। ये पाण्डव हमेशा न्यायनीति युक्त धार्मिक भावना रखते थे

किन्तु दुर्योधन आदि ईर्ष्या में बढ़ते ही गये।

किसी समय पाण्डव के मामा– वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ऊर्जयंत महापर्वत पर क्रीड़ा के लिए बुलाया। वहाँ पर बहुत काल तक ये नर और नारायण आनंद से क्रीड़ा करते रहे। वहीं पर श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा का अर्जुन के साथ विवाह संबंध हो गया। इसी प्रकार यादव वंश की कन्याओं का विवाह युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के साथ सम्पन्न हुआ। कुछ दिन बाद अर्जुन अपनी पत्नी सुभद्रा के साथ हस्तिनापुर आ गये और उन दोनों के अभिमन्यु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

कौरव-पाण्डवों की द्यूत क्रीड़ा :

किसी समय दुष्ट बुद्धि दुर्योधन ने पाण्डवों को बुलाया और द्यूत–जुआ खेलने का निर्णय लिया। धीरे–धीरे धर्मराज युधिष्ठिर अपने को छोड़कर सब राज्य वैभव हार गये। तब भीम ने आकर युधिष्ठिर को जुआ खेलने से रोका और उस व्यसन के दोष बताये, किन्तु धर्मराज ने बारह वर्ष तक अपने राज्य को हार कर जुआ खेलना बंद किया। ये पाण्डव अपने घर पहुँचे। इतने में ही दुर्योधन ने एक दूत भेजा जिसने आकर कहा कि आप लोग बारह वर्ष तक वन में निवास करें जिससे कि कोई भी आपका नाम भी न जान सके। अनंतर तेरहवाँ वर्ष गुप्त रूप से व्यतीत करें। ऐसा राजा दुर्योधन ने कहलाया है।

द्रौपदी का अपमान :

इसी बीच दुर्योधन का भाई दुःशासन दुष्टबुद्धि से आकर द्रौपदी के महल में जाकर उसकी चोटी पकड़कर उसे बाहर घसीट लाया और उसका अपमान किया। द्रौपदी की अपमान की बात सुनकर भीम और

अर्जुन अत्यधिक कुपित हो उठ खड़े हुए किन्तु युधिष्ठिर ने उन्हें उस समय शांत कर दिया।

इस समय यह भी प्रसिद्ध है कि 'दुःशासन' ने द्रौपदी का चीरहरण करना चाहा था किन्तु उसके शील के प्रभाव से वह बढ़ता ही चला गया था–

"जब चीर द्रौपदी का दुःशासन ने था गहा,
सवरे सभा के लोग थे कहते हहा–हहा।
उस वक्त भीर पीर में तुमने करी सहा,
परदा ढका सती का सुजश जगत में लहा।।[1]

पाण्डवों का वन प्रयाण :

उस समय रोती हुई माता कुन्ती को ये पाण्डव अपने चाचा विदुर राजा के घर पर छोड़कर चल पड़े। अत्यधिक मना करने पर भी द्रौपदी इनके साथ चल पड़ी। जुआ के दोषों का विचार करते हुए ये पाण्डव वन और पर्वतों में यत्र–तत्र भ्रमण कर रहे थे।

किसी समय अर्जुन विजयार्ध पर्वत पर जाकर रथनूपुर के इंद्र नामक राजा के शत्रुओं को परास्त कर वहाँ रहने लगे और शस्त्र विद्या में चित्रांग आदि सौ शिष्यों को प्राप्त किया। पुनः पाँच वर्ष बाद उसी कलिंजर वन में आकर भाई से मिलकर रहने लगे।

किसी समय सहाय वन में पाण्डवों का समाचर जानकर दुर्योधन उन्हें मारने के लिए सेना के साथ वहाँ पहुँचा तब नारद ऋषि से संकेत पाकर चित्रांग आदि विद्याधरों ने युद्ध में प्रवृत्त होकर दुर्योधन को बाँध

१. संकट हरण विनती।

लिया किन्तु युधिष्ठिर की आज्ञा से सज्जन स्वभाव वाले अर्जुन ने दुर्योधन को छुड़ा दिया। उस समय दुर्योधन ने कहा कि मुझे युद्ध में मरने का या पराजय का वह दुःख नहीं होता जो कि अर्जुन द्वारा बंधन मुक्त कराने का दुःख है। तब उसने यह सूचना निकाल दी कि जो पाण्डवों को मारकर मेरे अपमान जनित दुःख को दूर करेगा उसे मैं आधा राज्य दूँगा। तब एक कनकध्वज राजा ने पाण्डवों को मारने के लिए ''कृत्या'' नाम की विद्या सिद्ध की किन्तु उस विद्या ने उस कनकध्वज को ही मार डाला।

इधर घूमते-घूमते ये पाण्डव विराट नगर में पहुँचे। तब तक बारह वर्ष पूर्ण हो चुके थे और गुप्त रूप से तेरहवाँ वर्ष बिताना था। इसलिये युधिष्ठिर ने पुरोहित, भीम ने रसोईया, अर्जुन ने गंधर्व, नकुल ने घोड़ों के रक्षक, सहदेव ने गोधन के रक्षक का वेश बनाया और द्रौपदी ने मालिन का वेश बना लिया। ये सब कषाय (गेरुवा) रंग के वस्त्र पहन कर राज्य सभा में गए और विराट नरेश ने इनको यथायोग्य स्थानों पर नियुक्त कर दिया।

किसी समय विराट नरेशका साला कीचक वहाँ आया और द्रौपदी के रूप पर मुग्ध होकर उसके शीलहरण की चेष्टा करने लगा तब भीम ने स्त्री वेश में होकर उस कीचक को खूब दण्डित किया और द्रौपदी के शील की सुरक्षा की। किसी समय दुर्योधन के द्वारा भेजे गए अनेकों किंकर वापस आकर हस्तिनापुर में दुर्योधन से बोले महाराज! पाण्डवों का कहीं नामोनिशान नहीं मिलता है तब दुर्योधन ने उन लोगों को खूब इनाम दिया। तब भीष्म पितामह ने कौरवों से कहा, हे कौरवों! सुनो वे पाण्डव अल्प मृत्यु वाले नहीं हैं मेरे सामने एक बार मुनि ने कहा है कि ''युधिष्ठिर कुरुजाँगल देश का राजा होगा और शत्रुंजय पर्वत से मोक्ष

प्राप्त करेगा।'' अतः ये सत्पुरुष कहीं न कहीं जीवित अवश्य है।

किसी समय किसी जालंधर नाम के राजा ने दुर्योधन से कहा कि विराट राजा के पास बहुत सा गोधन है वह जगत में विख्यात है। मैं उसका हरण करूँगा तब गुप्त शरीर वाले पाण्डवों को शीघ्र ही मारुगाँ। दुर्योधन ने यह सब स्वीकार कर लिया। वहाँ विराट नगर पहुँचकर गोकुल हरण करने से विराट राजा के साथ युद्ध छिड़ गया, उसमें पाण्डवों ने जालंधर को बाँध लिया। इस घटना से दुर्योधन भी सेना लेकर वहाँ आ गया और द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कर्ण आदि सभी उसमें सम्मिलित थे। तब अर्जुन ने स्वनामाक्षर बाण भीष्म और द्रोण गुरु के पास भेजा। उस समय उन दोनों ने कौरवों को बहुत समझाया किन्तु न माने। अनंतर अर्जुन ने पितामह और गुरु द्रोणाचार्य को बहुत मना किया किन्तु वे लोग भी अर्जुन आदि के साथ युद्ध करते रहे। उस युद्ध में अर्जुन ने विजयपताका प्राप्त की और गोकुल को मुक्त कराया। कौरव राजागण लज्जित और पराजित होकर हस्तिनापुर चले आए।

उधर विराट राजा ने पाँचों पाण्डवों का परिचय प्राप्त कर उन्हें नमस्कार किया और कहा हे भगवन्! मैंने आपको पहचाने बिना आप लोगों को किंकर बनाया सो क्षमा करो, मैं आपका किंकर हूँ। आप यहाँ राज्य कीजिए तथा अभिमन्यु के साथ अपनी कन्या के विवाह के निश्चय किया। यह खबर द्वारावती में पहुँच गई और वहाँ से बलभद्र, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न, भानु, राजा द्रुपद आदि अभिमन्यु के विवाह में आए। कुछ दिन रह कर ये यादव लोग कुन्ती और पाण्डवों को लेकर द्वारावती चले गये, वहाँ अन्योन्य की प्रीति से वे दीर्घ काल तक रहे।

एक दिन द्वारावती में किसी ने श्रीकृष्ण को दुःशासन के द्वारा कृत

द्रौपती के अपमान की और दुर्योधन के अनेक दुष्टकृत्यों की बात कही। तब पाण्डवों के साथ विचार करके श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर एक दूत भेज दिया। दूत ने जाकर प्रणाम कर निवेदन किया, हे राजन्! श्रीकृष्ण का कहना है आप पाण्डवों से संधि करके उनका आधा राज्य उन्हें दे दीजिए अन्यथा आपके वंश का नाश होगा, श्रीकृष्ण आदि पाण्डवों की सहायता करेंगे। इस बात को दुर्योधन ने विदुर चाचा को बताया, विदुर ने भी इन लोगों को बहुत समझाया किन्तु वे दुष्ट कुछ भी नहीं माने तब विदुर ने विरक्त होकर वन में जाकर विश्वकीर्ति मुनि को नमस्कार करके जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली।

महायुद्ध (६)

किसी समय एक विद्वान् राजगृह नगर के राजदरबार में उत्तम रत्नों की भेंट लेकर जरासंध अर्धचक्री के पास गया और नमस्कार किया तब राजा जरासंध ने पूछा–"तुम कहाँ से आये हो और यह रत्न कहाँ से लाये हो।"? उत्तर में उसने कहा राजन्! 'द्वारिका में नेमिप्रभु के साथ श्रीकृष्ण राजा राज्य करते हैं। श्रीनेमि तीर्थंकर के गर्भ में आने से पहले से लेकर पन्द्रह मास तक वहाँ देवों ने रत्न वर्षाए थे उनमें के ये रत्न हैं, मैं वहीं से आपके दर्शनार्थ आया हूँ। यह सुनते ही जरासंध चक्री भड़क उठे और युद्ध के लिए प्रयाण कर दिया तथा दुर्योधन आदि राजाओं के पास समाचार भेज दिए। दुर्योधन बहुत ही प्रसन्न हुआ उसने सोचा यह पाण्डवों को समाप्त करने का अच्छा अवसर हाथ लगा है। जरासंध ने द्वारावती में दूत भेजा, वह दूत जाकर बोला हे यादवों! आपको चक्री ने कहलाया है कि आप देश छोड़कर इस महासमुद्र में कैसे रहते हैं? आप

लोग गर्व छोड़कर चक्री जरासंध की सेवा करें। तब बलभद्र क्रुद्ध होकर बाले–श्रीकृष्ण को छोड़कर अन्य चक्रवर्ती भला और कौन है? तथा दूत को फटकार कर निकाल दिया। यह सुनकर राजा जरासंध सेना के साथ युद्ध के लिए कुरुक्षेत्र में आ गया।

उस समय श्रीकृष्ण ने कर्ण के पास दूत से समाचार भेजा कि आप पाण्डु राजा के पुत्र युधिष्ठिर आदि के बड़े भाई हैं, आप सम्पूर्ण कुरुक्षेत्र का राज्य ग्रहण कीजिए, इधर आइए। माता कुन्ती ने भी उस कर्ण को वास्तविक स्थिति बताकर उस पक्ष से युद्ध करने के लिए बहुत रोका किन्तु कर्ण ने सारी बातें समझकर भी यह कहा कि राजा जरासंध के हमारे ऊपर बहुत उपकार हैं। अतः इस समय स्वामी की सहायता करना हमारा कर्त्तव्य है न कि बन्धुवर्गों की। यदि युद्ध में जीवित रहे तो पुनः बंधुओं का समागम प्राप्त करेंगे। कर्ण के दूत के द्वारा जरासंध के पास समाचार भेजा कि आप यादवों से संधि कर लीजिए अन्यथा श्रीकृष्ण के हाथ से आपका मरण होगा। इन सब बातों की जरासंध ने उपेक्षा कर दी।[१]

श्रीकृष्ण भगवान् नेमिनाथ के पास गए और पूछा कि शत्रु का क्षय होकर क्या मुझे विजय प्राप्त होगी? इस समय इन्द्रादि वंद्य भगवान् ने 'ॐ' ऐसा उत्तर दिया। इस उत्तर से और नेमिप्रभु के मंद हास्य से श्रीकृष्ण ने अपनी विजय को निश्चित कर लिया। इस समय भगवान् गृहस्थाश्रम में थे और सरागी थे।[२]

जरासंध के प्रयाण के समय अनेक अपशकुन हुए तब राजा ने

---

१. हरिवंशपुराण पृ. ५९०। २. उत्तरपुराण पर्व ७१, पृ. ३७९।

मंत्री से इसका फल पूछा! विद्वान् मंत्रियों ने कहा राजन्! जिसने आपकी कन्या के पति कंस को मारा है, मुष्टियों के प्रहार से चाणूर मल्ल को चूर्ण किया है और जिसने कोटिशिला उठाकर "मैं नारायण हूँ" इस बात को प्रगट कर दिया है उस कृष्ण के साथ आप लोगों का युद्ध अनिष्ट सूचक ही है। जिसके साथ अर्जुन हैं, भीम हैं और भी अनेक भूमिगोचरी हैं, विद्याधर राजा हैं। भगवान् नेमिनाथ के भाई ऐसे यादवों का तुम कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकोगे। फिर भी ये गर्विष्ठ राजागण कुछ नहीं माने। इधर नारायण श्रीकृष्ण भी सात अक्षौहिणी सेना सहित कुरुक्षेत्र में आ गए।

अक्षौहिणी का प्रमाण :

घोड़े, हाथी, पदाति और रथों से युक्त सेना अक्षौहिणी कहलाती है जिसमें ९००० हाथी, ९,००,००० रथ, ९,००,००,००० घोड़े और ९,००,००,००,००० (नौ सौ करोड़) पदाति हों उसे अक्षौहिणी कहते हैं। यादव पक्ष में अतिरथ, महारथ, समरथ, अर्धरथ और रथी ऐसे राजागण थे। बलदेव और श्रीकृष्ण अतिरथ थे। राजा समुद्रविजय, वसुदेव, युधिष्ठिर, अर्जुन आदि बहुत से राजा महारथ थे। स्तिमितसागर आदि वसुदेव के आठ भाई, शंब, द्रुपद आदि राजा समरथ थे। महानेमि, विराट आदि राजा अर्धरथ थे और इनके सिवाय अनेकों राजा रथी थे।

इस समय एक दूसरे के संबंधी ही विरोध पक्ष में थे। प्रद्युम्न इधर था तो उसके धर्मपिता कालसंवर जरासंध के साथ थे, अर्जुन के पितामह, बड़े भाई कर्ण, गुरु द्रोणाचार्य आदि कौरवों के साथ थे। यादव पक्ष में उनके साढ़े तीन करोड़ कुमार रण विद्या में कुशल थे और हजारों राजागण श्रीकृष्ण के साथ थे।

चक्रव्यूह रचना :

जरासंध की सेना में कुशल राजाओं ने शत्रुओं को जीतने के लिए चक्रव्यूह की रचना की। उस चक्रव्यूह में जो चक्राकार रचना की गई थी उसके एक हजार आरे थे, एक-एक ओर में एक-एक राजा स्थित था, एक-एक राजा के सौ-सौ हाथी थे, दो-दो हजार रथ थे, पाँच-पाँच हजार घोड़े थे सोलह-सोलह हजार पैदल सैनिक थे और उन राजाओं के हाथी, घोड़े आदि का प्रमाण पूर्वोक्त प्रमाण से चौथाई था। कर्ण आदि पाँच हजार राजाओं से सुशोभित राजा जरासंध स्वयं उस चक्र के मध्य भाग में स्थित था। गांधार और सिंध देश की सेना, दुर्योधन के सहित सौ कौरव और मध्य देश के राजा भी उसी चक्र के मध्य में स्थित थे। धीर वीर पराक्रमी पचास राजा अपनी-अपनी सेना के साथ चक्रधारा की संधियों पर अवस्थित थे। आरों के बीच-बीच के स्थान अपनी-अपनी विशिष्ट सेनाओं के युक्त राजाओं के सहित थे। इनके सिवाय व्यूह के बाहर भी अनेक राजा नाना प्रकार के व्यूह बनाकर स्थित थे।

गरुड़व्यूह की रचना :

इधर जब वसुदेव को पता चला कि जरासंध की सेना में चक्रव्यूह की रचना की गई है तब उसने भी चक्रव्यूह को भेदने के लिए गरुड़व्यूह की रचना कर डाली। नाना प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित पचास लाख यादव कुमार उस गरुड़व्यूह के मुख पर खड़े किए गए। अतिरथ, बलदेव और श्रीकृष्ण उसके मस्तक पर स्थित हुए। अक्रूर, कुमुद आदि जो वसुदेव के पुत्र थे वे बलेदव और श्रीकृष्ण की रक्षा करने के लिए उनके पृष्ठ रक्षक बनाए गए। एक करोड़ रथों के सहित भोज राजा गरुड़

के पृष्ठ भाग पर स्थित हुआ। राजा भोज की रक्षा के लिए धारण, सागर आदि अनेक राजा नियुक्त हुए। अपने महारथी पुत्रों तथा बहुत बड़ी सेना से युक्त राजा समुद्रविजय (नेमिनाथ के पिता) उस गरुड़ के दाहिने पंख पर स्थित हुए। और उसकी आजू-बाजू की रक्षा के लिए सत्यनेमि, मनोनेमि आदि सैकड़ों प्रसिद्ध राजा पच्चीस लाख रथों के सहित स्थित हुए। बलदेव के पुत्र और पाण्डव गरुड़ के बायें पक्ष पर आश्रय लेकर खड़े हुए इन्हीं के समीप उल्मुक, निषध आदि अनेक शस्त्रधारी राजा स्थित थे। ये सभी कुमार अनेक लाख रथों से युक्त थे। इनके पीछे राजा सिंहल, चन्द्रयश आदि राजा साठ-साठ हजार रथ लेकर स्थित थे। ये बलशाली राजा उस गरुड़ की रक्षा करते हुए स्थित थे। इनके सिवाय अशित, भानु आदि बहुत से राजा अपनी-अपनी सेनाओं से युक्त हो श्रीकृष्ण के कुल की रक्षा कर रहे थे। जिसके भीतर स्थित महारथी राजा उत्साह प्रगट कर रहे थे ऐसा ये वसुदेव के द्वारा निर्मित गरुड़व्यूह जरासंध के चक्रव्यूह को भेदन करने की इच्छा कर रहा था। यह अक्षौहिणी सेना का चक्रव्यूह, गरुड़व्यूह की रचना का विस्तार हरिवंश पुराण के आधार से है।[१]

इधर दुर्योधन, गांगेय (पितामह) और द्रोण गुरु पर अधिक कोप करने लगा कि हे तात! आप युदि अर्जुन से युद्ध नहीं करेंगे तो महान अनर्थ होगा। वे बोले हम क्या करें वह अर्जुन स्वयं हमें पूज्य समझकर हम लोगों से युद्ध नहीं चाहता है। खैर अंत में परस्पर में गुरु-शिष्य, पितामह-पोते आदि के भेद-भाव को छोड़कर वहाँ सब युद्ध में संलग्न हो गये। धृष्टद्युम्न (द्रौपदी के भ्राता) ने भीष्म पितामह को युद्ध में मृतक प्राय: करके गिरा दिया। तब उन्होंने उसी रणभूमि में ही संन्यास धारण

१. हरिवंशपुराण पृ.५९०।

कर लिया, उस समय दोनों पक्ष के लोग रण छोड़कर पितामह के पास आये और उनके चरण वंदन कर रोने लगे, तब गांगेय ने कौरव-पाण्डवों को बहुत ही उपदेश दिया और मैत्रीभाव करने को कहा। किन्तु उसका कुछ भी असर नहीं हुआ। इधर आकाश मार्ग से हंस और परमहंस नाम के दो चारणमुनि आये और भीष्म को चतुराहार का त्याग कराकर विधिवत् सल्लेखना ग्रहण करा दी। उन्होंने पंच महामंत्र का स्मरण करते हुए शरीर का त्याग किया और अजन्म ब्रह्मचर्य के प्रभाव से पाँचवें ब्रह्मस्वर्ग में देव हो गये।

इधर पुन: युद्ध प्रारंभ हुआ अभिमन्यु की वीरता से युद्ध में कौरव पक्ष में हाहाकार मच गया तब द्रोण की आज्ञा से जयार्द्रकुमार (जयद्रथ) ने अन्याय पूर्वक युद्ध करके अभिमन्यु को जमीन पर गिरा दिया। देवगणों ने भी कहा कि अन्यायी राजाओं ने यह अन्याय किया है। कर्ण ने अभिमन्यु से कहा 'पानी पिओ'' किन्तु अभिमन्यु ने उपवास ग्रहण करके पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हुए शरीर से निर्मम हो प्राण त्याग किया और देवगति प्राप्त की। चक्रव्यूह में मेरा पुत्र अभिमन्यु मारा गया है यह सुन सुभद्रा के शोक का पार नहीं रहा। अर्जुन ने इसका बदला चुकाने के लिए जयार्द्र की अनेकों रक्षा करने पर भी युद्ध में उसे मार डाला। शासन देवता के निमित्त से अर्जुन और कृष्ण को वहाँ अनेकों बाण प्राप्त हुये। एक समय युद्ध में कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि ये घोड़े प्यासे हैं, तब अर्जुन ने उसी समय दिव्य बाण से पाताल से गंगा जल निकालकर घोड़ों को पिलाया।

एक समय द्रोणाचार्य आदि ने रात्रि में पाण्डव सैन्य पर हमला

किया द्रोणाचार्य भी बार-बार अर्जुन आदि के बाण छोड़ दिए जाने पर भी युद्ध में आगे आते थे, उस समय "अश्वत्थामा" नाम का एक हाथी युद्ध में गिरा दिया गया। तब पाण्डवों के सैन्य ने युधिष्ठिर धर्मराज को नमस्कार कर प्रार्थना की कि "गुरुद्रोण के रहते हुए हम लोग जीत नहीं सकते हैं। इसलिए आप द्रोणाचार्य को कहें कि "अश्वत्थामा" मारा गया है, तो वो युद्ध से पराङ्मुख हो सकते हैं। "परन्तु धर्मराज ने कहा— "मैं असत्य कैसे कहूँ" फिर भी अत्यधिक आग्रह से अंत में उन्होंने वैसा कपट करना स्वीकार कर लिया। युधिष्ठिर ने कहा अश्वत्थामा हतः-"अश्वत्थामा" मारा गया है पुनः धीरे से कहा- "नरो वा कुंजरो वा" बस इतना सुनते ही द्रोणाचार्य, पुत्र शोक से व्याकुल हो गये तब पुनः युद्धिष्ठिर ने कहा अश्वत्थामा हाथी मारा गया है आपका पुत्र नहीं। इतने में ही धृष्टद्युम्न ने आकर आचार्य का मस्तक काट लिया। इस घटना से कौरव-पाण्डव रोने लगे और धृष्टद्युम्न को बहुत कुछ फटकारा किन्तु धृष्टद्युम्न ने कहा कि युद्ध में गुरु-शिष्य आदि का क्या पक्ष हो सकता है ? इस तरह महायुद्ध में सत्रह दिन समाप्त हो गये।

आगम में जो मनुष्यों का कदलीघात नाम का अकालमरण बतलाया गया है उसकी अधिक से अधिक संख्या यदि हुई थी तो उस युद्ध के मैदान के विषय में कहा जाता है।[१]

अठारहवें दिन युद्ध में मकरव्यूह की रचना की गई अंत में कौरव-

१. तत्र वाच्यो मनुष्याणां मृत्योरुत्कृष्ट संचयः।
कदलीघातजातस्येत्यूक्तिमत्तद् रणाँगणम्।।
उत्तरपुराण पर्व ७१।।१०९।।

पाण्डव के भयंकर युद्ध में अर्जुन की बाण वर्षा से कर्ण पृथ्वी पर गिर पड़ा। भीम ने भी दुःशासन आदि कौरवों को यमपुर में भेज दिया और अंत में दुर्योधन को मार डाला। उसी दिन क्रूर अर्धचक्री जरासंध प्रतिनारायण युद्ध भूमि में आया और चक्ररत्न का स्मरण कर श्रीकृष्ण पर चक्र चला दिया। उस चक्र ने श्रीकृष्ण की तीन प्रदक्षिणायें दीं और उनके दाहिने हाथ पर ठहर गया। उस समय श्रीकृष्ण ने जरासंध को कहा देख! अभी तू मान ले, किन्तु जरासंध ने कृष्ण को ग्वाल पुत्र आदि कहकर अपमानित किया तब श्रीकृष्ण ने उसी चक्र से जरासंध का मस्तक छेद दिया। उस समय देवों ने, यादवों पाण्डवों ने जय-जयकार किया। आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी, हे कृष्ण! आप तीन खण्ड के स्वामी नौवें नारायण हैं। आप इस त्रिखंड वसुधा का उपभोग कीजिए। अनंतर रणभूमि का शोधन करने वाले श्रीकृष्ण ने जरासंध और दुर्योधन आदि को मृतक पड़े हुए देखकर बहुत ही खेद व्यक्त किया। दुर्योधन दुर्भावना के निमित्त से नरकगति को प्राप्त हुआ। यादवों ने इन सबकी अगुरु, चंदन आदि से दाह क्रिया की और सबकी रानियों को धैर्य बँधाया, श्रीकृष्ण ने जरासंध के पुत्र सहदेव को गोद में लेकर प्रेम किया और उसे मगध देश का राजा बना दिया। बलदेव और श्रीकृष्ण अर्धचक्रवर्ती, वाद्य महोत्सवों के साथ द्वारावती नगरी में आ गये और जिनेन्द्र भगवान की पूजा आदि करके पापों की शांति की। कृष्ण की आज्ञा से पाण्डव भी हस्तिनापुर आकर न्याय से राज्य करने लगे और धर्म क्रियाओं में तत्पर हो गए। इस प्रकार से यह महायुद्ध महाभारत के नाम से प्रसिद्ध है। विशेष जिज्ञासुओं को पाण्डवपुराण (महाभारत) ग्रंथ, हरिवंशपुराण और उत्तरपुराण देखना चाहिए।

पाण्डवों पर आगंतुक संकट (७)

नारद का आगमन :

किसी समय हस्तिनापुर में भीम से आदरणीय राजा युधिष्ठिर राज्य सिंहासन पर विराजे थे, उनके ऊपर चंमर ढुर रहे थे और छत्र लगा हुआ था। उसी समय नारद जी आकाश मार्ग से पाण्डवों की सभा में आये। पुण्यशाली पाण्डवों ने उठकर नारद ऋषि का सम्मान किया, हाथ जोड़कर उच्च आसन आदि दिये, मंगल वार्तालाप हुआ। अनंतर वे नारद अंतःपुर में चले गये। वहाँ द्रौपदी दर्पण के सामने अपना श्रृंगार कर रही थी, इसलिए उसने नारद जी को नहीं देखा और उठकर विनय आदि नहीं किया। बस क्या था, नारद के क्रोध का पार नहीं रहा। वे वहाँ से चले गये और द्रौपदी के द्वारा हुये अपमान का बदला चुकाने के लिए अनेकों उपाय सोचते रहे।

द्रौपदी का अपहरण :

अंत में वे धातकीखण्डद्वीप के भरतक्षेत्र में गये वहाँ के अमरकंकापुरी का राजा पद्मनाभ था उसके सामने द्रौपदी के लावण्य की बहुत ही प्रशंसा की। वह राजा वन में जाकर मंत्राराधना से संगमदेव को बुलाकर उसे द्रौपदी को लाने को कहा। उस देव ने भी रात्रि में सोई हुई द्रौपदी को ले जाकर वहाँ उत्तम उपवन में छोड़ दिया। प्रातःकाल निद्राभंग होने पर द्रौपदी को सब मालूम हुआ कि मैं हस्तिनापुर से बहुत ही दूर यहाँ हरण कर लायी गई हूँ। पद्मनाभ राजा ने आकर द्रौपदी से बहुत ही अनुनय की किन्तु वह शीलव्रती द्रौपदी अचल रही। उसने अपने मस्तक पर वेणी बाँध कर अर्जुन के समाचार मिलने तक आहार और अलंकारों

का त्याग कर दिया।

इधर प्रातः द्रौपदी के न मिलने से "कोई शत्रु हरण कर ले गया है" ऐसा समझकर पाण्डवों ने सर्वत्र किंकर भेजे, श्रीकृष्ण को भी समाचार भेज दिये, सर्वत्र खोज चल रही थी। इसी बीच श्रीकृष्ण की सभा में नारद ने आकर कहा, हे केशव ! द्रौपदी अमरकंका नामक नगरी में मैंने देखी है आप उसे दुःख से छुड़ाइये। इस समाचार से श्रीकृष्ण और पाण्डव आदि बहुत ही प्रसन्न हुए। श्रीकृष्ण रथ पर बैठकर दक्षिण समुद्र के तट पर जा पहुँचे और लवण समुद्र के अधिष्ठाता देव की आराधना की। अनंतर लवणसमुद्र का रक्षक देव पाँचों पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण को छह रथों में बिठाकर क्षण मात्र में दो लाख योजन विस्तृत लवणसमुद्र का उल्लंघन कर उन्हें धातकीखण्डद्वीप के भरत क्षेत्र में ले गया। वहाँ श्रीकृष्ण ने पैरों के आघात से किले के दरवाजे को तोड़ दिया, नगर में सर्वत्र हाहाकार मचा दिया, तब द्रोही राजा पद्मनाभ घबड़ाकर द्रौपदी की शरण में पहुँचा और क्षमा याचना की।

द्रौपदी मिलन :

द्रौपदी ने उसे क्षमा करके अभयदान दिलाया और भाई श्रीकृष्ण तथा ज्येष्ठ, देवर एवं पति अर्जुन से मिलकर प्रसन्न हुई। उस समय अर्जुन ने स्वयं अपने हाथों से द्रौपदी की वेणी की गाँठ खोली। पुनः स्नान आदि करके सभी ने भोजन पान ग्रहण किया।

अनंतर पाण्डव और द्रौपदी को साथ लेकर श्रीकृष्ण समुद्र के किनारे आये और शंखनाद किया जिससे सब दिशाओं में शब्द व्याप्त हो गया। उस समय वहाँ चम्पानगरी के बाहर स्थित जिनेन्द्र भगवान् को

नमस्कार करके धातकीखण्ड के नारायण ने पूछा भगवन्! मुझ समान भक्तिधारक किसने यह शंख बजाया है ? भगवान् ने कहा कि यह जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र का नारायण श्रीकृष्ण है, अपनी बहन द्रौपदी के हरण से यहाँ आया था। नारायण कपिल को श्रीकृष्ण से मिलने की इच्छा हुई किन्तु भगवान् ने कहा तीर्थंकर-तीर्थंकर से, चक्रवर्ती-चक्रवर्ती से, नारायण-नारायण से मिल नहीं सकते हैं, केवल चिन्ह मात्र से ही उनका-तुम्हारा मिलाप हो सकता है। तदनन्तर कपिल नारायण वहाँ आये और दूर से ही समुद्र में कृष्ण के ध्वज का साक्षात्कार हुआ। कपिल नारायण ने अमरकंकापुरी के राजा पद्मनाभ को इस नीच कृत्य के कारण बहुत ही फटकारा।

श्रीकृष्ण का कोप :

कृष्ण तथा पाण्डव पहले की तरह महासागर को शीघ्र ही पार कर इस तट पर आ गये। वहाँ कृष्ण विश्राम करने लगे और पाण्डव चले गये। पाण्डव नौका के द्वारा गंगा को पार कर दक्षिण तट पर आ ठहरे। भीम ने क्रीड़ा के स्वभाव से वहाँ नौका तट पर छिपा दी। जब श्रीकृष्ण आये तब पूछा। आप लोग गंगा को कैसे पार किए ? तब भीम ने कृष्ण की सामर्थ्य को देखने के कुतुहल से कह दिया हम लोग भुजाओं से तैर कर आये हैं। श्रीकृष्ण भी घोड़ों सहित रथ को एक हाथ पर लेकर एक हाथ और जंघाओं से शीघ्रता से गंगा नदी के इस पार आ गये। तब पाण्डवों ने श्रीकृष्ण का आलिंगन कर अपूर्व शक्ति की प्रशंसा की और भीम ने अपने द्वारा नौका छिपाने की हँसी की बात बता दी। उस समय श्रीकृष्ण को पाण्डवों पर क्रोध आ गया क्योंकि असमय ही हँसी अच्छी

नहीं लगती है। श्रीकृष्ण ने कहा अरे पाण्डवों! तुमने अनेकों बार मनुष्यों के लिए भी असंभव ऐसे अनेकों विशेष कार्य देखें हैं फिर भला यहाँ मेरी शक्ति की क्या परीक्षा करनी थी ?

इस प्रकार वे उन्हीं के साथ हस्तिनापुर गये और वहीं अपनी बहन सुभद्रा के पौत्र (पोते) को राज्य देकर पाण्डवों को दक्षिण दिशा में भेज दिया। उस समय की घटना से अत्यधिक दु:खी हुए पाँचों पाण्डव, अपनी स्त्री और अपने पुत्रों को साथ लेकर दक्षिण मथुरा को चले गये और वहाँ राज्य करने लगे।

भगवान् नेमिनाथ का वैराग्य (८)

श्री नेमिनाथ का अतुल्य बल :

किसी समय युवा नेमिकुमार, बलदेव और नारायण आदि कोटि-कोटि यादवों से भरी हुई 'कुसुमचित्रा' नामक सभा में गये। सब राजाओं ने उठकर प्रभु को नमस्कार किया और श्रीकृष्ण ने भी प्रभु की अगवानी कर अपने बराबर बिठाया। उस समय सभी के बल की प्रशंसा होते-होते अनेक राजाओं ने श्रीकृष्ण नारायण के बल को सर्वाधिक बतलाया तब श्री बलभद्र ने कहा कि तीर्थंकर नेमिनाथ का बल नारायण और चक्रवर्ती से भी अधिक है। अत: इस सभा में श्री नेमिकुमार से अधिक बलशाली कोई नहीं है। तब श्रीकृष्ण ने नेमिनाथ की तरफ देखा और कहा कि बाहुयुद्ध में परीक्षा क्यों न कर ली जावे। भगवान् नेमिनाथ ने उस समय हँसकर कहा-कि अग्रज! बाहुयुद्ध की क्या आवश्यकता है ? आप मेरी इस कनिष्ठा अँगुली को ही सीधा कर दें। श्रीकृष्ण ने पूरी शक्ति लगा दी किन्तु असफल ही रहे, तब वहाँ श्रीनेमिनाथ के बल की प्रशंसा होने लगी।

श्री नेमिनाथ की जल क्रीड़ा :

एक समय बसंत ऋतु के आने पर श्रीकृष्ण अंत:पुर की रानियों के साथ भगवान् नेमिनाथ के साथ तथा अनेक राजा महाराजाओं से वेष्टित हो गिरनार पर्वत पर क्रीड़ा की इच्छा से गये थे।

यद्यपि भगवान् नेमिनाथ स्वभाव से ही राग से पराङ्मुख थे फिर भी वे श्रीकृष्ण की रानियों के आग्रह से वहाँ शीतल जल से भरे जलाशय में क्रीड़ा करने लगे। ये रानियाँ कभी तैरतीं, कभी डुबकी लगातीं, कभी पिचकारियों में जल भरकर एक-दूसरे के ऊपर डालतीं, कभी अँजुली में जल भरकर उछालतीं। वे जब नेमिनाथ के ऊपर जल उछालने लगीं तब श्रीनेमिकुमार ने भी जल्दी-जल्दी जल उछाल कर उन सबको विमुख कर दिया।

जलक्रीड़ा के अनंतर स्त्रियों ने श्री नेमिनाथ के शरीर को पोंछा और उन्हें दूसरे वस्त्र पहनाये। श्री नेमिकुमार ने जो तत्काल गीले वस्त्र छोड़े थे उसे निचोड़ने के लिए उन्होंने हँसते हुए श्रीकृष्ण की प्रेमपात्र रानी जाम्बवती को कह दिया। वह बनावटी क्रोध दिखलाती हुई बोली जो महानागशय्या पर आरूढ़ हो महाशंख को फूँकनेवाले हैं, चक्ररत्न के स्वामी ऐसे मेरे पतिदेव ने भी मुझे कभी ऐसी आज्ञा नहीं दी है फिर आप कोई विचित्र पुरुष ही जान पड़ते हैं जो कि मेरे लिए गीला वस्त्र निचोड़ने का ऐसा आदेश दे रहे हैं....।

इतना सुनते ही अन्य रानियों ने उससे कहा—अरी निर्लज्ज! तीन लोक के स्वामी ऐसे जिनेन्द्रदेव की तू निंदा क्यों कर रही है ?....। भाभी जाम्बवती के वचन सुनकर नेमिनाथ ने हँसते हुए कहा—तूने श्रीकृष्ण के जिस पौरुष का वर्णन किया है वह संसार में कितना कठिन है ?

इस प्रकार कहकर प्रभु वेग से नगर की ओर गये और शीघ्रता से राजमहल में घुस गये। वे लहलहाते हुए फणाओं से सुशोभित श्रीकृष्ण की विशाल नागशय्या पर चढ़ गये और शार्ङ्ग धनुष को उठाकर प्रत्यंचा से युक्त कर दिया तथा पांचजन्य शंख को जोर से फूँक दिया।

शंख का ऊँचा स्वर ऐसा गूँजा कि हाथी भी आलान खम्भों को तोड़कर भागने लगे। सारे नगर में हलचल मच गयी। श्रीकृष्ण ने भी तलवार खींच ली। पता लगाने पर जब सही समाचार विदित हुआ तो शीघ्र ही अपनी आयुधशाला में गये। वहाँ श्री नेमिप्रभु को नागशय्या पर अनादरपूर्वक खड़े देख विस्मित हो उठे। ज्यों ही उन्हें मालूम हुआ कि यह कार्य श्री नेमिनाथ ने रानी जाम्बवती के कठोर शब्दों से किया है त्यों ही उन्हें अत्यधिक हर्ष और संतोष हुआ। आगे बढ़कर उन्होंने श्री नेमिप्रभु का आलिंगन कर उनका अत्यधिक सत्कार किया और अपने घर आ गये।

उन्हें इस बात की खुशी हुई कि बहुत दिनों बाद यौवन को प्राप्त श्री नेमिकुमार के अंदर राग का अंकुर फूटा है। अत: प्रभु का क्रोध भी श्रीकृष्ण के संतोष का कारण बन गया। श्री बलदेव से परामर्श कर उन्होंने श्री नेमिकुमार के लिए राजा उग्रसेन की कन्या राजीमती की याचना की। राजा उग्रसेन ने कहा—प्रभो! मेरी पुत्री तीर्थंकर भगवान् की प्रिया हो इससे बढ़कर मुझे क्या खुशी हो सकती है।

श्री नेमिनाथ का विवाह समारंभ :

भगवान् नेमिनाथ रथ पर सवार हो वन की शोभा देखने के लिए निकले थे उनके साथ अनेक राजकुमार थे। आगें देखते हैं एक जगह अनेक तृणभक्षी पशु बाँधे गये हैं। भगवान् ने रथ रोककर पूछा—हे सारथि! ये

बहुत सारे पशु यहाँ क्यों रोके गये हैं ? सारथि ने विनय से कहा—

प्रभो ! आपके विवाह में मांसभोजी राजाओं के लिए इनको यहाँ रोका गया है। प्रभु ने तत्क्षण ही पशुओं को बंधन मुक्त कर दिया, उन्होंने क्षणमात्र में अवधिज्ञान से जान लिया कि यह मात्र एक षड्यंत्र बनाया गया है। वे उसी समय रथ को वापस मोड़कर अपने स्थान पर आ गये।

भगवान् का दीक्षा ग्रहण :

तभी लौकांतिक देवों ने आकर प्रभु के वैराग्य की स्तुति की और सौधर्म इंद्र आदि देवों ने आकर उन्हें पालकी में विराजमान कर सहस्राम्रवन में ले गये। वहाँ भगवान् ने दैगंबरी दीक्षा ग्रहण कर ली और ध्यान में लीन हो गये।

प्रभु को केवलज्ञान :

छप्पन दिन के अनंतर प्रभु को केवलज्ञान हो गया। तब बलभद्र और श्रीकृष्ण ने भगवान् के समवसरण में दर्शन कर धर्म उपदेश श्रवण किया। उसी समय राजीमती आर्यिका दीक्षा लेकर आर्यिकाओं की प्रधान गणिनी बन गयी। वहाँ श्री वरदत्त महामुनि गणधर थे।

एक बार श्री बलभद्र ने प्रश्न किया भगवान् ! श्रीकृष्ण का राज्य कितने काल तक रहेगा ? और द्वारावती की स्थिति कितने काल तक रहेगी ? इन प्रश्नों का उत्तर भगवान ने ऐसा दिया कि 'मद्य' के हेतु से यह नगरी द्वीपायन मुनि द्वारा नष्ट होगी। विष्णु का जरत्कुमार से मरण होगा। "यह सुनकर द्वीपायन (बलदेव के मामा) दीक्षा लेकर तत्काल वहाँ से दूर चले गये और भाई जरत्कुमार ने भी कौशाम्बी वन का आश्रय लिया। हरिवंश पुराण में कहा है कि बारह वर्ष समाप्त हो गए तब एक मास अधिक को न ख्याल कर द्वीपायन मुनि द्वारावती के बाहर

आकर ध्यान में लीन हो गये। पूर्व में ही कृष्ण ने नगर में यह घोषणा करा दी थी कि "मद्य" बनाने के साधन और मद्य शीघ्र ही ग्राम से बाहर अलग कर दिए जायें। उस समय समस्त मदिरा आदि को सभी ने कदंबगिरि की गुफा में फेंक दिया था। वह मदिरा बहुत दिनों तक वन में शिलाकुण्डों में भरी रही। श्रीकृष्ण ने यह भी घोषणा करा दी कि कोई भी हमारे इष्ट मित्र, पत्नी, पुत्र आदि दीक्षित होना चाहें तो मैं उन्हें मना नहीं करता, उस समय प्रद्युम्नकुमार आदि पुत्रों ने और रुक्मिणी, सत्यभामा आदि रानियों ने दीक्षा ले ली थी।

द्वारिका दाह :

किसी समय वन क्रीड़ा से थके हुए शम्बू आदि कुमारों ने वन में प्यास से पीड़ित हो जल समझकर उस शिलाकुण्ड की मदिरा को पी लिया और उन्मत्त भाव को प्राप्त हो गए। मार्ग में ध्यानस्थ मुनि द्वीपायन को देख उपसर्ग करना शुरू कर दिया। ऐसा बोले कि "यही साधु द्वारिका को भस्म करेगा।" बहुत देर तक उपसर्ग सहने के बाद वे मुनि धैर्य से च्युत होकर क्रुद्ध हो गए। वे क्रोध से भरकर अग्निकुमार जाति के भवनवासी देव हो गए और वहाँ से आकर द्वारिका में आग लगा दी। उधर शम्बुकुमार आदि शीघ्र ही नगर से निकल कर मुनि हो गए। धू-धू करके द्वादश योजन प्रमाण द्वारावती जलने लगी, फलस्वरूप कितनों ने संन्यास ले लिया, कितने ही अग्नि में तड़फ-तड़फ कर मर गए। श्रीकृष्ण बलदेव घबड़ा कर माता-पिता की रक्षा करने को तैयार हुए किन्तु असफल रहे। यह पाप द्वीपायन मुनि के लिए घोर संसार का कारण बन गया।[१]

---

१. हरिवंशपुराण पृ. ७५८।

बलदेव और श्रीकृष्ण जैसे-तैसे निकल कर पुण्य क्षीण हो जाने से बन्धुवर्ग रहित होते हुए दु:खितमना दक्षिण की ओर चले गए। पाण्डवों को लक्ष्य कर ये दक्षिण जा रहे थे कि मार्ग में कौशाम्बी वन में श्रीकृष्ण प्यास से व्याकुल हो लेट गए और बलदेव जल ढूँढते-ढूँढते दूर निकल गए। इधर जरत्कुमार ने श्रीकृष्ण के वस्त्र के छोर को वायु से हिलते हुए देखकर दूर से हरिण समझ बाण चला दिया। उस समय पादतल से विद्ध होते ही कृष्ण सहसा उठ बैठे। तब जरत्कुमार ने आकर कहा कि मैं वसुदेव का प्यारा पुत्र, बलभद्र और श्रीकृष्ण का भाई हूँ। श्रीकृष्ण की रक्षा की भावना करते हुए बारह वर्ष से जंगल में घूम रहा हूँ। हाय!हाय! यह क्या हुआ ? तब श्रीकृष्ण ने उसे प्यार कर कुछ समझा-बुझाकर अपना कौस्तुभमणि उसके हाथ में देकर वंश की रक्षा के लिए उसे शीघ्र ही भेज दिया और कहा कि तुम पाण्डवों से सब समाचार कहो। उस समय यथार्थ विचार करते हुए नेमिप्रभु को नमस्कार कर भविष्यत् में तीर्थंकर होने वाले ऐसे श्रीकृष्ण ने प्राण विसर्जन कर दिये। बलदेव वापस आकर भाई को मृतक देखकर मोह से पागल होकर छह मास तक शव को लेकर फिरते फिरे।[१]

बलेदव की दीक्षा :

जब पाण्डवों को यह समाचार मिला तो वे लोग बहुत दु:खी हुए और इधर आये। बलभद्र के मोह को देखकर इन लोगों ने तथा अन्यों ने भी बहुत कुछ उपदेश दिया, किन्तु बलभद्र पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। इन पाण्डवों ने भी उन्हीं के साथ रहते हुए वर्षाकाल वहीं समाप्त कर दिया। छह महीने के अनंतर सिद्धार्थदेव के द्वारा संबोधन को प्राप्त

१. हरिवंशपुराण पृ.५९०।

हुए बलदेव ने जरत्कुमार और पाण्डवों के साथ तुंगीगिरि के शिखर पर श्रीकृष्ण का दाह संस्कार कर स्वयं जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। अनंतर पाण्डवों ने फिर से अनेक वैभव युक्त द्वारिका नगरी को बसाकर जरत्कुमार को राज्य प्रदान किया।

पाण्डवों की दीक्षा :

अनंतर संसार के दु:ख से भयभीत हुए पाण्डव, पल्लव देश में विहार करते हुए श्री नेमि जिनेश्वर के समवसरण में पहुँचे। भगवान् को तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार करके धर्म श्रवण किया। सभी ने क्रम से अपने-अपने पूर्वभव पूछे और अंत में जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली। कुन्दी, द्रौपदी, सुभद्रा आदि ने भी राजीमती आर्यिका के समीप आर्यिका दीक्षा ले ली। पाँचों पाण्डव रत्नत्रय से विशुद्ध, पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि से अपनी आत्मा का चिंतवन करते हुए आत्म-सिद्धि के लिए घोर तप करने लगे।

श्री भीम मुनिराज ने एक दिन भाले के अग्रभाग से दिये हुए आहार को ग्रहण करने का नियम लिया। "क्षुधा से उनका शरीर कृश हो गया था। छह महीने में उनका यह वृत्तपरिसंख्यान पूरा हुआ और आहार लाभ हुआ।" [२]

पाण्डव मुनियों पर उपसर्ग :

किसी समय ये पाँचों पाण्डव मुनि सौराष्ट्र देश के शत्रुंजय पर्वत पर प्रतिमा-योग से विराजमान हो गये। उस समय दुर्योधन की बहन का पुत्र कुर्युधर वहाँ आया और पाण्डवों को अपने मामा के शत्रु समझकर

१. हरिवंशपुराण पृ.५९०।

उन पर दारुण उपसर्ग करने लगा। उसने लोहे के सोलह प्रकार के उत्तम आभूषण बनवाये जिनमें कुण्डल, बाजूबंद, हार आदि थे और तीव्र अग्नि में उन्हें तपा-तपाकर लाल वर्ण के अंगारे जैसे कर-करके उन पाण्डवों को संडासी से पहनाना शुरू किया। मस्तक पर मुकुट, गले में हार, कर में कंकण, बाजूबंद, कमर में करधनी, चरणों में पादभूषण, पाँचों अँगुलियों में मुद्रिकायें आदि अग्निमय गरम-गरम पहना दीं। जैसे अग्नि लकड़ियों को जलाती है वैसे ही वे सब अग्निमय आभूषण मुनियों के शरीर को जलाने लगे। उस समय उन मुनियों ने ध्यान का आश्रय लिया, वे बारह भावनाओं का और शरीर से निर्ममता का चिंतवन करने लगे। वास्तव में दिगम्बर जैन साधु ऐसे-ऐसे घोर उपसर्ग के समय अपने धैर्य और क्षमा से विचलित नहीं होते हैं।

मोक्षगमन व सर्वार्थसिद्धि गमन :

वे पाण्डव मुनि शरीर को अपनी आत्मा से भिन्न समझकर शुद्धोपयोग में स्थिर होकर श्रेणी में चढ़ गये। धर्मराज युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन मुनियों ने क्षपकश्रेणी में चढ़कर शुक्लध्यान के द्वारा घातिया कर्मों का नाशकर केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया और तत्क्षण ही अघातिया कर्मों का नाशकर ये अंतकृत् केवली मोक्ष को प्राप्त हो गए, परम सिद्ध परमात्मा बन गए। एक क्षण में आठवीं पृथ्वी के ऊपर तनुवातवलय के अग्रभाग में विराजमान हो गए।

नकुल और सहदेव मुनि उपशम श्रेणी पर चढ़े थे। ये दोनों बड़े भाईयों की दाह को सोचकर आकुलचित्त हो गये थे। इसलिए यहाँ से उपसर्ग सहन करके वीरमरण करते हुए "सर्वार्थसिद्धि" में अहमिन्द्र हो

गये हैं। वहाँ पर तैंतिस सागर तक रहेंगे पुनः मनुष्य होकर तपश्चर्या करके उसी भव से मोक्ष प्राप्त करेंगे। ये पाँचों पाण्डव मुनि महान् उपसर्ग विजेता हुए हैं। इन पाण्डवों को इस हस्तिनापुर में हुए आज लगभग छियासी हजार पाँच सौ वर्ष हुए हैं। इन्हें मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार होवे।